

Printed and Published by K. Mitra,
at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

प्रस्तावना

सचिदानन्द पन को कृपा से आज हम भाग्य-काव्यरसियों के समस्त आनन्द और संकोच के साथ महाकवि देवदत्तजी की रचनाओं का संक्षिप्त संग्रह उपस्थित करने हैं। हम संग्रह में कई सौ छन्दों का संकलन है। आनन्द इसलिए है कि साहित्यानुरागियों को एक लब्धप्रतिष्ठ कवि की सुललित रचनाओं के समास्वादन करने का सीमाव्य प्राप्त हो सकेगा और संकोच इसलिए है कि कुछ लोग इसे शृङ्गार-प्रधान होने के कारण उपेक्षा की दृष्टि में देखेंगे। हमके प्रति सौम्य प्रकट करनेवाले वे ही मज्जन होंगे जो विष्णुद तथा पवित्र शृङ्गार के वास्तविक मीदर्य एवं रहस्य को न समझकर मानसिक प्रसार में बहते हैं और शृङ्गारी रचनाओं को अश्लीलता एवं दुश्चरित्रता की जननी समझते हैं। विष्णु मह अपनी प्रसन्न रसि को बात है।

प्रस्तुत संग्रह देवजी की सुप्रसिद्ध रचनाओं में किया गया है। अट्याम, भावविलास, भवानीविलास, रसविलास, प्रेमचन्द्रिका, सुमतामर-मरंग, सुदृढ-विलास एवं सुन्दरगायन की भात करने की हमने चेष्टा की। इनमें से सुदृढविलास की हस्तलिखित प्रारम्भिक विष्णुदत्तजी की कृत में प्राप्त हुई और सुमतामर-प्रम पानपुर-विद्यापीठ हस्तलिखित कृतों में।

हमारे विचार में हम संग्रह के समस्त हानि उत्तर है।

देवजी लगभग ५२ ग्रन्थों के रचयिता बतलाये जाते हैं । ग्रन्थ बनाने में उनको इसलिए देर नहीं लगती थी कि वे प्रायः एक ही छन्द को अपने भिन्न भिन्न ग्रन्थों में यथास्थान सन्निविष्ट कर दिया करते थे । इनके एक ही छन्द में भिन्न भिन्न रस, अलंकार, भाव, गुण, वृत्ति, ध्वनि इत्यादि का सन्निवेश रहा करता था । अतः एक ही छन्द कई साहित्यिक विषयों के उदाहरणों के लिए पर्याप्त था । इसी लिए इस संग्रह में भी सुललित छन्दों की एकाधिक बार आवृत्ति हो जाना सम्भव है । अपने सहयोगी समालोचकों की रचनाओं से इस पुस्तक की रचना करने में सहायता मिली है । अतः श्रीयुक्त मिश्रबन्धुओं एवं कृष्णविहारी मिश्र को धन्यवाद देना हमारा कर्तव्य है । साथ ही पं० श्यामविहारी शर्मा, पं० गणेशप्रसाद चतुर्वेदी आदि के भी हम कृतज्ञ हैं, जिनकी कृपा से हमें देवजी की अलभ्य रचनाओं से संग्रह करने का अवसर मिला ।

प्रयाग
शिवरात्रि, सं० १९६५ }

हरदयालु सिंह

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
भूमिका	
१—महाकवि देवदत्त का जीवन-चरित	१
२—रचना का विवेचन	९
३—देव का कवित्व	२९
४—भावनामय	३८
संग्रह	
१—भावविलास	८५
२—अष्ट जाम	९५
३—भवानी-विलास	१०२
४—रसविलास	११७
५—प्रेम-चन्द्रिका	१३३
६—सुजान-विनाद	१४५
७—सुखनागर-नरैण	१६१
८—कुशलविलास	१७३
९—मृदु कविता	१८६

देव-दर्शन

मङ्गलाचरण

एकै पग मोहत विभूति सिव आभरण,
दृजे पग जेवदार जावक जरे रहैं ।
एकै कर पन्नग फौ फंकन विराजै चारु,
दृजे कर चूरिन की सुपमा नजे रहैं ॥
आधे भाल राजत हैं गङ्ग की तरङ्ग तुङ्ग,
आधे भाल लाल लाल नेंदुर भरे रहैं ।
पापनि ननाधैं दुःख-द्वन्द्वनि दुराधैं,
नोई गिरिजा गिरीन जग मंगल करे रहैं ॥

महाकवि देवदत्त का जीवन-चरित

दो०-तुलसी मनि पुनि नूर रवि, फेनय उट्ट, उपमान ।

पै भाषा मै देव कवि, फैलल देव मनान ॥

हिन्दी-साहित्य के नूर्य महारवि मूरदान और चन्द्रना
गोरखानी तुलसीदास तथा नचन्द्र-नन्दरा आचार्य वैरागदान के
नाथ मातारवि देवदत्त की तुलना करने हुए निम्नलिखित हैं

कहा था कि देव वह व्योम-मंडल है जिसमें सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रादिक सभी अपनी अपनी कक्षा में घूमा करते हैं। इस उक्ति में वास्तविक तथ्य है। इसी तथ्य का निरूपण हम आगे चलकर यथास्थान उदाहरणों द्वारा करेंगे। हमारी धारणा है कि यदि हिन्दी-साहित्य में पक्षपात-पूर्ण मनेवृत्ति से काम न लिया जाय या महाकवि की रचनाओं के साथ उनके त्याग और तपस्या के अङ्क न जोड़े जायँ तो अवश्य महाकवि देवदत्त के सामने प्रतियोगिता में कोई नहीं ठहर सकता।

महाकवि देवदत्त का जन्म विक्रमीय सं० १७३० में इटावे में हुआ था, जैसा उन्होंने स्वयं कहा है “द्यौसरिया कवि देव को नगर इटावे वास।” इसके अतिरिक्त उन्होंने ‘भावविलास’ में कहा है कि सोलहवें वर्ष के चलते ही संवत् १७४६ में उन्होंने यह ग्रन्थ बनाया था। संवत् १७४६ में देवदत्त की अवस्था सोलह वर्ष की थी; अतः इनका जन्मवर्ष १७३० ही माना जायगा। कुछ लोग मैनपुरी को इनका जन्मस्थान होने का श्रेय देते हैं। बहुत सम्भव है कि उस समय मैनपुरी और इटावा के जिले सम्मिलित रहे हों, जैसा कि बहुत दिन तक रह चुके हैं।

देव कवि कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और इटावा शहर के पंसारी टोला बल्लालपुरा में रहते थे। इनके वंशज अब भी मैनपुरी मण्डलान्तर्गत कुसमरा ग्राम में रहते हैं। ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने इनका जन्मस्थान ‘समाना गाँव’ माना है।

वह भी मैनपुरी में ही है। इनके पिता का नाम विद्यादास

था। उनके व्यवसाय एवं शिक्षा-दीक्षा के विषय में कोई बात निश्चय-पूर्वक नहीं कही जा सकती।

कविवर देव सरस्वती के उन वरद पुत्रों में थे, जिन्होंने मोलह वर्ष की अवस्था में ही भावविलास ऐसे सुन्दर रीति-ग्रन्थ लिखने की क्षमता पाई थी। यदि महाकवि भवभूति की तरह ये भी दर्पोक्ति में कहते कि—

वचन के बस जागु नरस्वती

करति काज मनो गृहभामिनी।

तो इसमें कोई अत्युक्ति न होती। क्योंकि इन्हीं श्रीणा-पाणि के प्रसाद से देव कवि लगभग ५२ या ७२ ग्रन्थों के प्रणेता माने जाते हैं, जिनमें से आधे ग्रन्थों को सुद्रष्टा का भी सौभाग्य प्राप्त हो सका है।

जिम नमय महाकवि देवदत्त की कविता-मरीचि-मालिकाएँ दिगन्तों का धधलित कर रही थीं, उस नमय दिल्ली के राज्य-मिहानन पर सुगल-कुल-धूमकेतु प्रौरद्वयेश था। इसके कुनोय पुत्र का नाम आचमशाह था। यह बड़ा ही सुगुल, वीर एवं नादित्यानुसारी था। इसी ने शिहारी-ननमर के कल-पत्त कराया था। इसी लिए ननमर का आचमशाहो कल प्रमित है। कविवर देवदत्त को इसी का आशय मिला। इनने देव के पशुवान और भावविलास को ध्यान-दूरंद मुना और उसकी प्रशंसा की थी। यह पटना संवत् १७२३ की है। यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि देव की

भेंट आजमशाह से कहाँ हुई थी; दिल्ली में या दक्षिण में ? इतिहास के अनुशीलन से सिद्ध होता है कि उस समय औरङ्गजेब दक्षिण की रियासतों को ध्वंस करने में लगा था, और राजकुमार आजमशाह उसी की संरक्षकता में सैन्य-संचालन करता था । इसी काल में महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी के पुत्र शम्भाजी का विराध-वध किया गया था, जिनका एकमात्र अपराध यह था कि वे राजबन्दी होकर भी औरङ्गजेब के इच्छानुसार धर्म-परिवर्तन के लिए तैयार न थे । परम प्रतिभा-सम्पन्न देव को आजमशाह जैसा उदारहृदय आश्रय-दाता मिलना नितान्त स्वाभाविक था । उनके कवित्व का यही ईश्वर-दत्त उपहार था ।

जिस प्रकार चक्रनेमि ऊपर-नीचे जाते-आते हैं, उसी प्रकार भाग्य-रेखा भी चलती रहती है । जिसकी उन्नति चरम सीमा तक पहुँच जाती है, उसका हास भी होता है । संवत् १७५१ के लगभग विधि-विडम्बना-वश औरङ्गजेब की शनि-दृष्टि आजमशाह पर पड़ी । वह प्रकारान्तर से छिन्नविभव होकर दूरस्थ गुजरात प्रान्त का शासक बनाया गया, और राजकुमार मोअज्जम औरङ्गजेब का कृपापात्र हुआ । संवत् १७६४ में औरङ्गजेब का देहान्त हुआ और चारों राजकुमारों में मयूर-सिंहासन के लिए युद्ध होने लगा । इस युद्ध में आजमशाह मारा गया । उसकी मृत्यु के साथ देव कवि का सम्पर्क भी दिल्ली-दरबार से छूट गया । ऐसी दशा में देव ने किसी आश्रय-दाता की खोज में या तीर्थाटन के लिए लम्बी यात्रा की होगी, और उस यात्रा

के ही सम्बन्ध में इन्होंने भारत के भिन्न भिन्न देशों और नगरों का निरीक्षण किया होगा तथा वहाँ के निवासियों की वेश-भूषा, रहन-सहन इत्यादि को भली भाँति देखकर जाति-विलास की रचना की होगी। इस सुदीर्घ यात्रा से प्राप्त अनुभव को देव व्यर्थ कैसे करते ?

कहते हैं कि देव बड़े ही रूपवान् थे। उनकी धाणी बड़ी मधुर थी। स्वाभिमान उनमें कूट कूटकर भरा था। वे पुराने ढंग का बड़े घेर का जामा पहनते थे, और गिर पर पगड़ी लगाते थे। इनके चाक़्सिद्ध कवीश्वर होने के सम्बन्ध में एक दन्त-कथा प्रचलित है। एक बार देव भरतपुराधीश महाराज जवाहरमिह से मिलने गये। उस समय डींग के दुर्ग का निर्माण हो रहा था। महाराज ने इनसे कविता सुनाने का आग्रह किया, परन्तु देव ने उस समय सुनाना स्वीकार नहीं किया और कहा कि इस समय नरखत्री नौनायकग्वन किये हुए हैं। परन्तु महाराज के बार-बार आग्रह करने पर इन्होंने कटे छन्द सुनाये। दुर्भाग्य-वश इनके मुख से इस आशय का भी एक छन्द निकल गया कि डींग दुर्ग में ननुष्यों के गिर लुप्त होने हिरोंगे।

एक राजा के नामने ऐसी निर्भीकता के साथ स्पष्ट बात कहना कोई साधारण बात न थी। वह देव ऐसे साहसी कवि का ही काम था जो नरखत्री की आशा की अशोचिता न करने स्पष्ट बात कह दे। महाराज को देव को यह स्पष्टवादिता पसन्द न आई होगी, और कहावित्तु इन्हें दुर्गहार भी न मिला

होगा। परं देव को इसकी क्या चिन्ता थी। कहते हैं कि देव की भविष्यवाणी सर्वथा ठीक निकली।

दिल्ली-दरबार से अलग होकर देव अपने लिए किसी सुयोग्य गुणग्राही आश्रयदाता की खोज में रहे। अन्त में इन्हें भवानीदत्त वैश्य का आश्रय मिला। इन्हीं के नाम पर आपने 'भवानीविलास' नामक ग्रन्थ की रचना की। परन्तु यहाँ भी देव टिके नहीं। कुछ समय के बाद आप इटावा के शुभकर्णसिंह सेंगर के पुत्र कुशलसिंह के यहाँ गये और उनके नाम पर 'कुशलविलास' बनाया। इसके बाद आपको राजा उद्योतसिंह का आश्रय मिला। उद्योतसिंह के पिता का नाम मर्दनसिंह था। उद्योतसिंह बड़े साहित्यानुरागी थे। इनके नाम पर देव ने 'प्रेमचन्द्रिका' की रचना की है।

इन तीनों ग्रन्थों में देव ने अपने आश्रय-दाताओं का नामोल्लेख तो किया है, परन्तु उनकी प्रशंसा में छन्द नहीं कहे। अपने आश्रयदाता के प्रति कवि की इतनी उदासीनता और शब्द-कृपणता का कारण समझ में नहीं आता। संभव है, इसका कारण वही स्पष्टवादिता हो, या देव ने अपने आश्रयदाताओं में वे गुण न देखे हों जिन पर मुग्ध होकर कवि को उनकी प्रशंसा करने की प्रवृत्ति होती है। अथवा यह भी संभव है कि इन लोगों ने देव का यथेष्ट आदर न किया हो, अथवा इनका आदर उन्हें न जँचा हो। क्योंकि ये सम्राट् का आदर प्राप्त कर चुके थे। अथवा इनके आर्थिक आदर के

साथ गुणग्राहकता और सम्मान का अभाव रहा हो, जिम्मे देव ने इनकी प्रशंसा न की हो। अन्यथा कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि हजारों छन्दों का बनानेवाला कवि अपने आश्रयदाता के प्रति इस प्रकार मौन रहे। यदि कहा जाय कि देव की मनोवृत्ति ही ऐसी थी या उनमें कृतज्ञता-प्रकाशन के भाव ही न थे, तो ऐसा अनुमान नितान्त निर्मूल होगा। अवाक् पशु में भी कृतज्ञता-प्रकाशन के भाव होते हैं, फिर देव ऐसे उदारहृदय कवि में इसका अभाव कब सम्भव है? देवदत्त ने तो अपने गुण-प्राप्ति सुयोग्य आश्रयदाता के प्रति भूरि भूरि कृतज्ञता-प्रकाशन के भाव व्यक्त किये हैं; परन्तु उन्होंने ऐसा तभी किया है जब उनके विचार में वह व्यक्ति वास्तव में उस सम्मान का पात्र था।

संवत् १७८३ में देवदत्त को राजा भोगीलाल का आश्रय प्राप्त हुआ। मालूम होता है कि भोगीलाल बड़े ही गुणग्राही और कवियों के कल्पतरु रहे होने। इनके नाम पर देव ने 'रत्न-विलस' नामक ग्रन्थ की रचना की और इनके पुरस्कार स्वर्ण राजा साहब ने इनके दान-दक्षिणा में सन्तुष्ट किया। भोगीलाल की प्रशंसा कवि ने इस प्रकार की है—

दोहा

देव नूरवि लाले लले राव, राज-मन्त्राल ।

'रत्नविलस' मनि गीन्हैं 'भोगीलाल' मृजाल ॥

घनाक्षरी

भूलि गयो भोज, बलि, बिक्रम बिसरि गये,
 जाके आगे और तन दौरत न दीदे हैं;
 राजा, राव, राने, उमराव, उनमाने,
 उन माने निज गुन के गरब गिरबीदे हैं ।
 सुबस बजाज जाके सौदागर सुकवि,
 चलेई आवैं दसहू दिसान के उनीदे हैं;
 भोगीलाल भूप लाख-पाखर लिवैया, जिन,
 लाखन खरचि रचि आखर खरीदे हैं ॥

सरस्वती के उपासक से लक्ष्मी कुछ रूठी सी रहती है; क्योंकि सपत्नी भाव रखने के कारण जहाँ पर सरस्वती निवास करती है वहाँ पर कमला नहीं रहती । लक्ष्मी ने स्पष्ट ही कहा है—

पीतः क्रुद्धेन तातश्चरणतलहतो वल्लभो येन रोपात्
 आवाल्याद्विप्रवर्यैः स्ववदनविवरे धार्यते वैरिणी मे ।

नेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमानाथपूजानिमित्तं

तस्मात् खिन्ना सदाहं द्विजकुलनिलयं नाथ युक्तं त्यजामि ॥

(अज्ञात कवि)

कदाचित् इसी लिए महाकवि देवदत्त को स्थायी रूप से किसी सम्पन्न महापुरुष का आश्रय न प्राप्त हो सका । भोगीलाल के यहाँ कुछ मनमुटाव होने के कारण या तो देव टिक न सके अथवा उनका देहावसान हो गया, यह कुछ निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता ।

जिस समय देव ने 'शब्द-रसायन' की रचना की थी, उस समय वे किसी के आश्रित न थे। इन्हीं लिए वह किसी को समर्पित नहीं किया गया है। इसी प्रकार 'जातिविलान' भी किसी को समर्पित नहीं है। इसके बाद बहुत दिनों तक देव को कोई आश्रयदाता न मिला, परन्तु इसके अभाव में देव ने काव्य-रचना में कोई शिथिलता नहीं दिखाई। अन्त में उन्हें पिहानी-निचामी अकबरअली खाँ का आश्रय प्राप्त हुआ और इन्होंने तब तक बनाई हुई सारी कविताओं को 'मुखनागर-तरंग-संग्रह' का नाम देकर इन्हीं महानुभाव के अर्पण किया।

रचना का विवेचन

कहा जाता है कि देव ने ५२ ग्रन्थ बनाये हैं। कुछ लोग इन्हें ७२ ग्रन्थों का रचयिता बताने हैं। इन अधिकता का कारण यह प्रतीत होता है कि इनके सुन्दर सुन्दर छन्द कई ग्रन्थों में ज्यों के त्यों मिलते हैं। उदाहरण के लिए 'जातिविलान' और 'रत्नविलान' ही को ले लीजिए। इनके पढ़ने से विदित होता कि जो छन्द रत्नविलान में है, वही जातिविलान में है; और वही अन्य ग्रन्थों में भी। इससे हम इन अनुमान पर पहुँचते हैं कि देव कवि अपने ग्रन्थों के सुन्दर सुन्दर छन्दों को टाँटकर नये नये संग्रह मैदान किया करते थे। दूसरी बात यह भी है कि इनके एक ही छन्द में कई सुन्दर भाव, रस, अलंकार इत्यादि का समावेश है। अतः नास्तिक के निम्न निम्न

अङ्गों के उदाहरण देने के लिए वही एक छन्द काम में आ जाता था ।

देव ने भर्तृहरि की तरह नीति और वैराग्यशतक भी लिखे हैं । वैराग्य का उदय स्वभावतः मनुष्य के हृदय में शृंगार के अनुभव के अनन्तर ही होता है, या उत्कृष्ट प्रेम पर ठेस लगने पर, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास और भर्तृहरि को हुआ था । यहाँ पर हम उन महानुभावों की चर्चा नहीं करते जिनमें ईश्वरदत्त विभूति के समान वैराग्य का अङ्कुर जन्म से ही होता है । देव ने जन्म भर शृंगारी रचनाएँ की थीं, और इसी शृंगार-प्रधान रचना करने के कारण वे शृंगारी कवियों के प्रमुख नेता कहे जाते थे । शृंगारी रचना करते करते अन्त में उनकी प्रवृत्ति वैराग्य की ओर हुई होगी और सो भी वृद्धावस्था में । इससे प्रतीत होता है कि वैराग्यशतक देव की वृद्धावस्था की रचना होगी ।

इससे पहले देव ने रामचरित का आश्रय लेकर कोई काव्य भी लिखा होगा जो इस समय अपने पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है ; यद्यपि उसके सुन्दर सुन्दर छन्द इधर-उधर मिल जाते हैं । पाठकों के मनोविनोद के लिए हम निम्नलिखित छन्द उपस्थित करते हैं—

सवैया

अनुराग के रंगनि रूपतरंगनि, अंगनि ओष मनो उफनी ।
'कवि देव' हिये सियरानी सवै, सिय रानी को देखि सोहाग सनी ।

वर धामिनि वाम चढी वरसैं, मुसकानि मुधा घनसार घनी ।
सखियानि के आनन-इन्दनु तैं अँखियानि की वन्दनिवार तनी ।

कैसा सुन्दर और स्वाभाविक चित्र है । सीता की विदा हो रही है । अपनी अपनी अटारियों पर खड़ी हुई मिथिला की सुन्दरियाँ वरात की विदा देख रही हैं । वनिताएँ समान आकार की हैं । उनके मुख-मयङ्गों से नेत्र-इन्दीवरों की वन्दनवार सी बँधी मालूम होती है । महाकवि कालिदास ने भी इस भाव पर रघुवंश में लिखा है:—

अथ पथि गमयित्वा पल्लवरम्योपकार्यै

कनिचिद्वनिपालः शर्वरीः सर्वकल्पः ।

पुरमविशदयोध्यां मैथिलीदर्शनानाम्

कुचलयितगवाक्षां लोचनैरंगनानाम् ॥

यदि कालिदास के श्लोक और देव के छन्द के भाव की तुलना की जाय तो विदित होगा कि देव की रचना में जैसा मौन्दर्य है, वैसा कालिदास की कृति में नहीं है ।

इसी प्रकार रामचन्द्र के वनवासवाचि मन्त्राण करके अयोध्या में पुनरागमन के समय पौशल्या का वर्णन देव ने किया है । जाना न होगा कि देव को जगज्जननी मिथिलानन्दिनी के प्रति किननी मर्या थी, यद्यपि वास्तव में हित हरियश मन्त्रदायक शिष्य होने के कारण ये प्रजापीन भीष्टप्रचन्द्र आनन्दरन्द एवं दम्भातुनन्दिनी के उपासक थे—

भाग की भूमि सोहाग की भूषन, राजसिरी निधि लाज निवासू ।
 आई है मेरी दुहूँ कुल दीपक, धन्य पतिव्रत प्रेम प्रकासू ।
 लंक ते आई निसङ्क लिये सुख, सर्वसु वारति कौसिला सासू ।
 पाइन पैते उठाइ सियै, हिय लाइ बलाइ लै पोंछति आँसू ॥

उपर्युक्त अवतरणों से सिद्ध होता है कि देव ने कोई रामपरक काव्य अवश्य लिखा होगा, जो समय के फेर से अब उपलब्ध नहीं है। देव के अन्तिम आश्रयदाता पिहानी-निवासी श्री अकबरअली खाँ थे। अकबरअली का समय संवत् १८२४ माना जाता है। इस समय देव की अवस्था ९४ वर्ष की थी। ५२ या ७२ ग्रन्थों को बनाकर ९४ वर्ष के वृद्ध से और कौन सी साहित्य-सेवा करने की आशा की जा सकती है? संभव है, वृद्धावस्था तक उनके हृदय में रसिकता का आभास रहा हो। संभव है, केशव की तरह वे रसिक भी रहे हों परन्तु मस्तिष्क-शक्ति का उसी प्रकार काम करते जाना हमारी समझ में कम आता है। यहाँ पर हम देव की तुलना उन महाकवि से नहीं करते जो ईश्वरीय कृपा के कारण १२६ वर्ष की अवस्था तक कविता करते रहे। 'सुखसागर तरङ्ग' के बाद की देव की और कोई रचना नहीं मिलती। इससे अनुमान होता है कि इन महाकवि का देहावसान लगभग ९४ वर्ष की अवस्था में संवत् १८२४ के लगभग हुआ होगा।

देव के बनाये हुए २९ ग्रन्थों का पता अब तक चला है। इनकी तालिका इस प्रकार है—

मुद्रित

१ भावविलास	प्रयाग से प्रकाशित
२ अष्टयाम	भारतजीवन प्रेम, काशी ।
३ भवानीविलास	"
४ सुजानविनोद	काशी-नागरीप्रचारिणी नभा ।
५ राग-रत्नाकर	"
६ प्रेमचन्द्रिका	"
७ रत्नविलास	भारतजीवन प्रेम, काशी ।
८ सुगन्धसागरतरङ्ग	लखनऊ से प्रकाशित ।
९ जगद्दर्शन-पचीसी	} विश्वेश्वर यालचन्द्र यन्त्रालय, जयपुर ।
१० आत्म-दर्शन-पचीसी	
११ तत्त्वदर्शन-पचीसी	
१२ प्रेम-पचीसी	
१३ शृंगारविलासिनी	

हस्तलिखित

१४ प्रेमतरङ्ग, १५ कुशलविलास (हिन्दुस्तानी पदे-उमो, प्रयाग के पुस्तकालय में रक्षित हुई), १६ देवचन्द्रिका, १७ ज्ञानविलास, १८ रावदरमायन, १९ देव-भावा-प्रपञ्च नाटक (अक्षय्य प्रसाद), २० कुसुमविलास, २१ पापन-विलास, २२ रत्नानन्द-नक्षत्री, २३ प्रेम-दीपिका, २४ सुमिल विनोद, २५ राधिकाविलास, २६ नगर-शिखर-प्रेम-दर्शन, २७ नीतिशतक, २८ वैद्यक ग्रन्थ (बिलगा के पुस्तकालय में रक्षित हुआ) ।

थे । उन्होंने संस्कृत साहित्य से बहुत से भाव नहीं लिये, इसका कारण यह है कि वे मौलिकता के समर्थक थे । परन्तु उन्होंने संस्कृत के कवियों से जो भी भाव लिया है, उसको परिमार्जन करके ऐसा अपनाया है कि उस पर उनकी मुद्रा अंकित हो गई है । उन्होंने जो भाव लिये हैं, उन्हें उनके साहित्यिक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर लिया है न कि केशव की तरह पाण्डित्य-प्रदर्शनार्थ कोरे अनुवाद के लिए । संस्कृत-गर्भित पदावली के प्रयोग से प्रखर पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति परिलक्षित नहीं होती । निष्कर्ष यह कि भावविलास अपने ढंग का एक सुन्दर ग्रंथ है । हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं होता कि यह अपने समकक्ष भाषा के किसी रीति-ग्रंथ से विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से हीन नहीं है । आश्चर्य तो यह है कि देव ऐसे ग्रंथ को १६ वर्ष की अवस्था में बना चुके थे । क्या यह उनकी लोकोत्तर एवं सर्वपथीन प्रखर प्रतिभा का परिचायक नहीं है ?

(२) अष्टयाम देव की द्वितीय रचना है । इसकी रचना भावविलास के साथ ही संवत् १७४६ में ही हुई थी । इसे देव ने औरंगजेब के पुत्र आजमशाह को सुनाया था और उसने इसकी प्रशंसा भी की थी । इसके विषय में देव ने भावविलास में लिखा है —

दिल्लीपति नवरंग के, आजमसाहि सपूत ।

सुन्यौ सराह्यौ ग्रंथ यह, अष्टयाम संजूत ॥

जैसे इस ग्रंथ का विषय थोड़ा है, उसी अनुपात में इसका कलेवर भी छोटा है। दिनचर्या के वर्णन के लिए ही यह बनाया गया है। इससे मालूम होता है कि उस समय के राजाओं के पास विलास को छोड़कर कोई काम ही नहीं था। इसमें न कोई पढ़ने-लिखने की चर्चा है, न देवाराधन की और न किसी राज्य-प्रबन्ध की। चर्चा है तो केवल विलासिता की। समझ में नहीं आता कि देव ऐसे उस कंठि के कवि ने राजाओं के लिए ऐसा विलासप्रधान टाइमटेबुल क्यों तैयार किया। इसके धृष्ट सुन्दर हैं।

(३) भवानीचिन्दास दादरीपति राजा भीतागम-नन्दन भवानीदास वैश्य के नाम लिखा गया है। देव ने भवानीदास की प्रशंसा में इस प्रकार लिखा है—

श्रीपति जेहि सम्पति दई, नतति नुगति नुनाम ।
दादरीक अति दादरी-पति नृप भीतागम ॥
नवलनिह पति धर्मभुज भीतागम नरेंद्र ।
तानन इन्द्र कुंदर नम, धैर्य नुदंन नरेंद्र ॥
'देव' हरि हर पर देव नरभर सिरी...

भील नरवर नरवन्त प्रमान है ।
सुनि हो नवन दिव्य गानन के हन जन,
नीचे परनो के दिधि दिधिति शिमान है ।
भीतागमनन्दन भवानीदास 'देवीदास'
विष्णु के पालन मन्वधर्म के निमान है ।

सम्पति निधान साँझ भोर ससि भान,

महामान सनमानिबे को मान सनमान है ॥

इस ग्रंथ में रसनिरूपण किया गया है। रसों की जैसी विशद व्याख्या की जानी चाहिए थी वैसी ही की गई है। देव ने वीर रस के तीन ही भेद किये हैं—युद्धवीर, दयावीर और दानवीर। परन्तु पद्माकर ने इनके अतिरिक्त एक धर्मवीर और भी बतलाया है। मम्मटाचार्य युद्धवीर को ही वास्तविक वीर रस के अंतर्गत मानते हैं।

(४) सुजानविनोद भी नायिका-भेद-प्रधान है। ग्रंथ के प्रारम्भ में उपालम्भ काव्य की शैली पर कुछ छंद उद्धव के विषय में लिखे गये हैं और अन्त में ऋतुवर्णन है। इस ऋतुवर्णन में सेनापति के ऋतुवर्णन के समान कोई नवीनता नहीं है, परन्तु जिस प्राचीन पद्धति के अनुसार लिखा गया है, उस दृष्टि से इसकी रचना सराहनीय है।

(५) कुशलविलास की रचना फफूँद ज़िला इटावानिवासी ठाकुर शुभकरणसिंह के पुत्र कुशलसिंह के नाम पर की गई थी। इसको अभी मुद्रित होने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है। इसे हिंदी-साहित्य का दुर्भाग्य कहना चाहिए कि देव ऐसे महाकवि की रचनाएँ अब तक प्रकाश में नहीं आईं। इसकी एक हस्तलिखित प्रति प्रयाग के हिन्दुस्तानी एकेडेमी के पुस्तकालय में रखी है और डा० ताराचन्द्र की कृपा से यह हमें देखने की मिली थी। इसी ग्रंथ से हमने कुशलविलास

का संग्रह भी किया है। इसकी कविता अच्छी है। इसमें देव ने अपने आश्रयदाता की अधिक प्रशंसा नहीं की है। संभव है, कुशलसिंह ने प्रचुर दान-दक्षिणा से सम्मानित न किया हो।

(६) देवचरित का विषय पौराणिक है। यह जरामन्ध-वध के समान कंसवध के विषय पर लिखा गया है। कंसवध तक तो इसके वर्णन विस्तार-पूर्वक हैं परन्तु अन्य वर्णन संक्षिप्त हैं। सूरमागर की तरह इसमें भगवान् की जिस लीला में देव को अधिक आनन्द आया, उसका वर्णन उन्होंने विस्तार-पूर्वक किया और जिसमें यथेष्ट आनन्द नहीं आया उसको संक्षेप में टाल दिया। कवि ही तो ठहरे। किसी के बन्धन में धोड़े ही हैं कि हर एक विषय का नषा-तुला वर्णन करने के लिए विवश हों; और न कोई काव्य ही लिख रहे हैं, जिसके लिए उन्हें रीतिकारों का अनुशानन मानना पड़े। हितहरिवंश सम्प्रदाय के शिष्य होने के कारण देव को कुम्भ-लीला में विशेष आनन्द आना स्वाभाविक था; इसी लिए उन्होंने कुम्भपरक काव्य अधिक किया है। चान्दम में गङ्गानाथव से बढ़कर शृंगाररत्न का आलम्बन विनाय बनने का और अधिकारी ही कौन हो सकता है। अतः देव के काव्य का मारा शृंगार प्रजापीड के ही समकित है। इसमें रामलीला और बलवन्मदेश का भी वर्णन है। यहाँ पर हम यह जान निःसंकोच भाव से रहना चाहते हैं कि न तो देव का राम वर्णन नन्ददान की राम-संवात्सल्य से बनता है न लज्जा

है और न इनका उद्धव-सन्देश सूरदास के भ्रमरगीत से अथवा रत्नाकर के उद्धवशतक से। देव के प्रेमी हमें इस धृष्टता के लिए क्षमा करें।

यहाँ पर कहा जा सकता है कि नन्ददास ने जिस आधार पर अपनी पञ्चाध्यायी बनाई है, वह बहुत दृढ़ है। यही हाल सूरदास के भ्रमरगीत का है। यदि देव की इस विषय पर की रचनाएँ उक्त कवियों की कृतियों से टकराने लें तो कौन सा आश्चर्य का प्रसङ्ग है। इससे देव की कीर्ति-कौमुदी मलिन नहीं होती। हाँ, देव ने कालिय-मर्दन और गोवर्द्धन-धारण करने के प्रसङ्गों का वर्णन बड़ी सुन्दरता से किया है। इनके वर्णन में देव ने चित्र खींच दिया है। इस वर्णन में सूर के सिवा और कोई भी कवि देव के सामने प्रतियोगिता में नहीं ठहर सकता। यह ऐसा विषय था कि देव चाहते तो इस पर एक खण्डकाव्य लिख सकते थे, परन्तु न जाने क्यों उन्होंने खण्डकाव्य लिखने का प्रयास नहीं किया। कविसुलभ प्रतिभा का उनमें अभाव न था। विषय-वर्णन के लिए क्षेत्र भी पर्याप्त था। हाँ, मनोवृत्ति अवश्य न थी, इसका कारण देशकाल का प्रभाव था।

(७) प्रेमचन्द्रिका की रचना डौड़ियाखेरा के राजा राव मर्दनसिंह के द्वितीय पुत्र उद्योतसिंह के नाम पर की गई थी। इसका विषय नामकरण के अनुकूल ही है। इसमें शृंगाररस का

रसराजत्व प्रतिपादित किया गया है। देव ने जिस प्रेम का वर्णन किया है वह श्रीसर्वा शतान्द्री के अर्द्धशिक्षित रसिकों का प्रेम नहीं है, जिसका आविर्भाव पूर्वानुराग मात्र में होता है प्रत्युत इनके प्रेम में सीता और राम के उस आदर्श प्रेम की मात्रा अन्तर्हित रहती है, जिसका आश्रय लेकर आर्य-ललनाएँ अपने पतिदेव से परित्यक्त होकर भी आर्यपथ से विचलित नहीं होतीं। देव इन्द्रिय-जन्य सुख को तुच्छ समझते हैं और ऐसे प्रेम की भी निन्दा करते हैं। शृंगार रस को प्रधानता देते हुए भी देव उसे इन्द्रिय-जन्य लालुपता से सदा बचाने रहे हैं। प्रथ के परार्ध में देव के विचारों में परिवर्तन का परि-लक्षित होता है। प्रेममागर ने निकलकर आप भक्ति की मन्दाकिनी में अवगाहन करते हैं। वही पुराना पेटेंट रामलीला का वर्णन होता है। फिर दो-चार भक्तों का उद्धरण दे करके ग्रंथ का अन्त किया गया है।

(८) जातिविलास की रचना अनुमानतः उस समय की गई होगी जब आखमशाह के निधन से दिल्ली-दरबार से देव का सम्बन्ध टूट गया था। इनके वर्णनों में तो ऐसा मान्य होता है कि इन्होंने भारतवर्ष के अधिराज प्रदेशों की यात्रा की थी : क्योंकि इनमें विभिन्न जातियों की स्थिति का वर्णन है। देव ने अपनी इस यात्रा में जो कुछ अनुभव किया था, उसके परिणामस्वरूप इस ग्रंथ की रचना की है। इनमें फारसी की किताबी से स्फार

कहारिन तक का वर्णन है। इसके द्वारा अधमपात्रनिष्ठ रति की ओर संकेत होता है जो विश्वनाथ के मत से शृंगार रस न होकर रसाभास का सुन्दर उदाहरण है। यों तो वेनीप्रवीन ने भी अपने नवरसतरंग में जाति जाति की दूतियों का वर्णन किया है परन्तु देव का वर्णन परम उत्कृष्ट है। इसी बात पर मिश्रबन्धुओं ने इनका सच्चरित्रता पर संदेह किया है। परन्तु यह संदेह यथार्थ नहीं प्रतीत होता। रसिया आदमी सर्वथा चरित्रहीन नहीं हुआ करते। सूरदास ने तो राधिका का ऐसा ऐसा वर्णन किया है, जैसा देव ने नहीं किया है; परन्तु सूर पर ऐसा आक्षेप कोई नहीं करता। वेचारे नर-काव्य करनेवालों पर सभी भौहें मरोड़ते हैं।

(६) रागरत्नाकर संगीत-ग्रंथ है। जिस प्रकार तुलसी और सूर में संगीत और साहित्य दोनों ही कलाओं का सन्निवेश था वैसे ही देव में भी था। देव उच्च कोटि के कवि होने के साथ साथ संगीतज्ञ भी थे। भले ही वे तानसेन की तरह अच्छे गवैये न हों, क्योंकि गायन अभ्यास पर निर्भर है। परन्तु वे गायन के सिद्धान्त को अवश्य जानते थे। इसका प्रमाण है रागरत्नाकर, जिसमें उन्होंने रागों का सूक्ष्म विवेचन किया है। इसमें दो अध्याय हैं। पहला अध्याय दूसरे अध्याय की अपेक्षा बहुत बड़ा है। पहले अध्याय में राग और रागिनियों का वर्णन है और दूसरे में उपरागों का अत्यन्त संचिप्त वर्णन है। रागों के विषय में जितनी ज्ञातव्य

चाते थीं, उनका वर्णन देव ने सूत्र-रूप में सुन्दर सवैयाओं में किया है। इन सवैयाओं में "सुरंग में प्योधिनी" शब्द अधिक आया है। यह सा, रे, गा, मा, पा, धा, नी, स्वरों का संकेत है।

(१०) रसविलास की रचना देव ने राजा भोगीलाल के लिए संवत् १७८३ में की थी। इसमें अष्टागवती कामिनी का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। इससे पहले देव भावविलास की रचना कर चुके थे। परन्तु उसके बाद भी इन्होंने उसी विषय पर दूसरा ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता समझी। बात यह है कि रीति-काल के कवि अपनी सारी प्रतिभा नायिका-भेद लिखने में ही व्यय करते थे। उनके आश्रयदाता उसी विषय पर कविता सुनना चाहते थे। इसलिए कविगण अपने आश्रय-दाताओं का मनोरंजन करने के लिए उसी विषय पर लिखते भी थे। देव ने अपनी कविता का विषय वही लिया है परन्तु वे अपनी निजी पद्धति पर चले हैं। इनके वर्णन इतने उत्कृष्ट नहीं जितने प्रेमचन्द्रिका के। इनमें कई नायिकाओं के लक्षण-उदाहरण स्पष्ट नहीं होने पाये। काव्य की दृष्टि से रचना सुन्दर है। यह ग्रन्थ देव की प्रौढ़ावस्था का लिखा हुआ है क्योंकि इसकी रचना में भी प्रौढ़ता है।

(११) काव्यरत्नायन देव की रचनाओं में सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसे 'शब्दरत्नायन' भी कहते हैं। इसकी रचना में देव कवि होकर नहीं प्रसन्न आचार्य होकर रहते मानने आते हैं। इस

समय देव के सम्मुख केशवदास का आदर्श उपस्थित होता है। इसमें आपने शब्दशक्ति पर विचार किया है, परन्तु आपकी विचार-शैली में विचित्रता है। संस्कृत-साहित्य में आचार्यों ने शब्द की तीन शक्तियाँ मानी हैं जिनके नाम हैं, अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना। देव ने इनके साथ एक “तात्पर्य वृत्ति” का भी उल्लेख किया है। पाठकों की जिज्ञासा के लिए हम इस वृत्ति-विशेष की व्याख्या भी करते हैं। तात्पर्य वृत्ति का अर्थ है, वाक्य के भिन्न भिन्न पदों के वाच्यार्थ को एक में सम्मिलित कर देना। अतः प्रकारान्तर से यह अभिधा शक्ति ही हुई। परन्तु यह वाक्यगत है। साहित्य-वेत्ताओं के लिए यह कोई नई बात नहीं है। जिन लोगों ने न्यायशास्त्र का अध्ययन किया है, उन्हें तो यह बहुत दिनों से मालूम होगी। हाँ, जिन लोगों ने साहित्य-शास्त्र की वर्णमाला भी नहीं पढ़ी है, उनके लिए भले ही इसमें कोई नई बात हो। जहाँ अन्य आचार्यों ने नवरस की कविता बतलाई है, वहाँ देव ने छः रस मुख्य माने हैं, परन्तु रस-राज शृंगार को ही माना है। इसके अतिरिक्त इन्होंने रस के सम शत्रु और मित्र भावों की कल्पना की है।

चित्रकाव्य एक ऐसा विषय है, जिसमें परिश्रम अधिक होता है। इसी लिए आचार्यों ने चित्रकाव्य की निन्दा की है। देव ने इस ग्रन्थ में दशाक्ष काव्य पर विचार किया है। इस समय देव मत्तर अलङ्कारों का अस्तित्व मानते थे, यद्यपि भाव-

विलास लिखते समय इन्होंने ३९ अलङ्कार माने थे। उपमा अलङ्कार का निरूपण तो देव ने बड़े विस्तार के साथ किया है, परन्तु अन्य अलङ्कारों का बहुत संक्षेप से। काव्य के लिए हिन्दी कवियों ने छन्द का उपयोग अनिवार्य ममता है। यदि निबन्ध छन्दोबद्ध न हो तो लोग उसका कवित्व ही स्वीकार न करेंगे। संस्कृत के आचार्यों ने काव्य का रूप स्थिर करते हुए काव्य की छन्दो-बद्धता को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया। उनका कथन है कि यदि निबन्ध में काव्योचित गुण उपलब्ध हैं तो वह काव्य है, चाहे गद्य हो या पद्य। इसी आधार पर इन्होंने कादम्बरी, हर्ष-चरित एवं दशकुमार-चरित तक को काव्य के अन्तर्गत माना है। देव ने अपने पिङ्गल में छन्दों का निरूपण धड़ी सुन्दरता से किया है और दण्डक नियत एवं अनियत गणयण घनाक्षरियों को भी लिया है। चित्रकाव्य के अन्य अङ्ग मेरु, मर्कटी, पताका, नष्टोद्दिष्ट आदि ने भी देव परिचित थे। दुर्भाग्य-वश अब तक यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। हिन्दी की उन्नति के युग में ऐसे ग्रन्थरत्न का अप्रकाशित रहना बड़े दुर्भाग्य की बात है।

(१२) नुरगमागस्तरेण को देव ने पिङ्गली-निवासि अवधनखली काँ के लिए बनाया था। इसमें भी नादिरा-भेद है। नागून होता है, अज्जदखली काँ नाहय मादिय-प्रेमी रहे होंगे, तभी को इन्होंने इसे पसन्द किया। इसमें

परिभाषा निर्माण करना कठिन है। अतः हम इस पर अधिक न लिखकर इतना ही विचार करके संतोष करेंगे कि कविता की कारणीभूत साधन शक्ति देव में कहाँ तक थी। शक्ति क्या है, शक्ति किसे कहते हैं—इसका उत्तर देते हुए आचार्य रुद्रट ने अपने काव्यालंकार में कहा है—

मनसि सदा सुसमाधिनि विस्फुरणमनेकधाभिधेयस्य ।

अक्तिष्टानि पदानि च विभान्ति यस्यामसौ शक्तिः ॥

अर्थात् शक्ति उसे कहते हैं, जिसके द्वारा सुस्थिर अन्तःकरण में भाँति भाँति के वाक्यार्थों का स्फुरण हो और सरल पदों का ज्ञान हो। काव्य के लिए शक्ति का होना नितान्त आवश्यक है। परंतु साथ ही निपुणता, लौकिक वृत्ति के परिज्ञान एवं काव्यों के परिशीलन तथा काव्यांश की शिक्षा के द्वारा अभ्यास की भी आवश्यकता होती है। इन्हीं के द्वारा काव्य रचना एवं उसके रसास्वादन का अनुभव करने का सामर्थ्य होता है। इसके बिना यदि काव्य-रचना असम्भव नहीं तो दुरूह अवश्य है। काव्य-प्रकाशकार मम्मटाचार्य ने उसका हेतुनिरूपण करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा है—

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।

काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥

इसका मर्मार्थन कुवलयानन्दकार ने भी किया है। वे प्रतिभा पर अधिक जोर देते हैं। प्रतिभा नव-नव उन्मेष-शालिनी बुद्धि को कहते हैं। उनका कथन है—

प्रतिभैव श्रुताभ्याससहिता कविताम्रप्रति ।

हेतुर्मृदन्मुसम्बद्धा धीजमालालतामिव ॥

अप्यदीक्षित

दीक्षितजी के मत का समर्थन करते हुए श्रीयुत विष्णु कृष्ण शास्त्री चिपलूणकर कहते हैं कि काव्य के लिए विद्वत्ता और निपुणता उतनी आवश्यक नहीं है जितनी प्रतिभा । परन्तु आचार्य दंडी कहते हैं कि सारामार ग्रहण और त्याग में निपुणता अधिक काम देती है । शक्ति का कार्य वही समाप्त हो जाता है, जहाँ हृदय में शब्द और अर्थ का मन्त्रिधान होता है । निष्कर्ष यह कि काव्य के लिए शक्ति, प्रतिभा और निपुणता तीनों की आवश्यकता है और इससे बढ़कर आवश्यकता है काव्य-शास्त्र के अभ्यास की ।

तत्र शक्त्या शब्दार्था मनसि ननिधीयन्ते ।

सारामारग्रहणनिगमौ व्युत्पत्त्या क्रियते ॥

काव्यादर्श

जब हम देव की प्रतिभा और शक्ति पर विचार करने हैं तो हमें यह स्पष्ट विदित होता है कि यह शक्ति इनमें पूर्णतया विद्यमान थी; क्योंकि यदि ऐसा न होना तो जोल्ह वरं की अपभ्रंश में 'भाव-विलान' ऐसे अस्पष्ट रीति-मन्त्र की रचना कैसे की जा सकती थी । जोर-जबहार-मैतुल्य भी इनमें अस्पष्ट छोटि का था । वे धनु का मन्दर निरीखत विद्या करने में । सातमस्तक के दरबार में प्रस्ता होकर उन्होंने एक लम्बी यात्रा

की थी। इस यात्रा में उन्हें भारत भर में भ्रमण करना पड़ा था। इससे उन्होंने प्रत्येक जाति, देश और श्रेणी की स्त्रियों का जैसा निरीक्षण किया था, उसके अनुभव-स्वरूप 'रस-विलास' नामक ग्रन्थ तैयार किया। देव के इस अवला-प्रकृति-निरीक्षण को लोग चाहे जिस दृष्टि से देखें, परन्तु उसमें कुछ तत्त्व भी है।

देव ने शृंगार-रसमयी कविता अधिक की है। यद्यपि कवि के नाते उन्हें नवों रस लिखना चाहिए था। बात यह है कि रीति-काल के बहुतेरे कवियों ने शृंगार रस के ही लिखने में अपनी प्रतिभा का प्रयोग किया है। फिर देश-काल के प्रभाव से देव कैसे वंचित रह सकते थे? वह समय ही ऐसा था जब लोगों को आचार्य बनने की धुन थी, कवि बनने की नहीं। इसी लिए उम काल की रचना रीति-बद्ध है।

शृंगार-रस को कवियों ने रसरज माना है। देव भी इसके विशेष रूप से समर्थक हैं। शृंगार रस के स्थायी भाव में जैसी सुकुमारता, स्वाभाविकता एवं व्यापकता है, वैसी अन्य रसों के स्थायी भावों में नहीं। यदि विचार करके देखा जाय तो दाम्पत्य-प्रेम में प्रकृत पुरुष के पुनीत प्रेम का प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है। इसके आलम्बन-विभाव में समान आकर्षण है। इसके उद्दीपन-विभाव भी एक से एक सुन्दर हैं। प्रेम का वर्णन केवल हिन्दी-साहित्य में ही नहीं है, प्रत्युत इसकी छाया विश्व-साहित्य में देखी जा सकती है। धार्मिक ग्रन्थों में भी इसका आभास मिलता है। बड़े बड़े कवियों ने इसी का वर्णन करके प्रतिष्ठा प्राप्त की

है और कविवर कालिदाम कालिदाम हो गये हैं। महापुरुषों ने दाम्पत्य प्रेम को मानव-समाज के विकास का एक उपयोगी साधन बतलाया है।

देव ने स्वकीया के प्रेम को श्रेष्ठ बतलाया है। कविता के आचार्यों ने जिन जिन गुणों की आवश्यकता बतलाई है, उन सबके उदाहरण देव की शृंगारिक रचनाओं में दिये जा सकते हैं।

कविता का काम लोभोत्तर आनन्द प्रदान करना है, केवल उपदेश देना ही नहीं। उपदेशकों का कवि मानना भी एक प्रकार की भूल है। हम व्यक्तिगत रूप से कबीर और नानक को कवि मानने के लिए तैयार नहीं; क्योंकि उनकी रचनाएँ कोरे उपदेश हैं। वे काव्य की उन कमौटियों पर नहीं कसी जा सकती, जिनका विधान अलङ्कारशास्त्रियों ने अपने रीतिग्रन्थों में किया है। आज-कल शृंगाररस के विरुद्ध जो नागार्जुन नामाजिक सम्राट हो रहा है, हमने हम नहीं मानती। परन्तु साथ ही हम कुछ अपूर्ण नाट्य-निर्माण के भी विरोधी हैं। कवि का समाज के प्रत्येक वर्ग के चित्र चित्रित करने पड़ते हैं। जिस प्रकार वह वैशा का चित्र चित्रण करता है, उसी प्रकार स्वकीया का। कवि भी नीति का उपदेश देता है, परन्तु अपने उपदेशों में कुछ खोप ही नाशुन रहता है। सारी कविताएँ उपदेशपूर्ण ही नहीं हूँदा करती। उपदेशमय कविता भी कविता हो सकती है, यदि हमने प्रायोगिक गुणों का मालिगान

हो। कविता के लिए जितनी आवश्यकता रस-परिपाक की है, उतनी उपदेशों की नहीं। हमारे विचार से उपर्युक्त आदर्शवादिता के फेर में पड़कर ललित कला का संहार करना कदापि उचित नहीं।

कविता का प्रधान गुण भाव है और गौण शब्द-सौन्दर्य है। शब्द-माधुर्य इसी परिधि के अंतर्गत आ जाता है, इसलिए हमें कविता की मीमांसा करते समय इस बात पर दृष्टि रखनी चाहिए कि इसमें भावों का सामंजस्य कहाँ तक है। शब्द-माधुर्य ब्रजभाषा का एक अंगीभूत गुण है। ब्रजभाषा में कविता करने का जिन्हें अभ्यास है, उन्हें माधुर्य गुण लाने के लिए बहुत भटकना नहीं पड़ता। वह आप ही आप उनकी रचना में आ जाता है। जब हम देव की कविता पर विचार करते हैं, तब हमें विदित होता है कि इसमें माधुर्य गुण का आधिक्य है। कारण यह है कि सबकी सब विशुद्ध, परिमार्जित और परिष्कृत ब्रजभाषा में है। इसके अधिकांश छन्दों में कोमल कान्त पदावली उपलब्ध है। कहना न होगा कि माधुर्य का कविता के साथ अंग-अंगी सम्बन्ध है। जो लोग सोचते हैं कि माधुर्य ने कविता का कोई भी सम्बन्ध नहीं है, हमारी राय में वे भूल करते हैं।

जहाँ देवजी काव्यशास्त्र के पारगामी पंडित थे, वहाँ वे संगीतशास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे। यदि ऐसा न होता तो राग-

रत्नाकर ऐसे सुन्दर ग्रन्थ की रचना करने में वे कभी समर्थ न होते। इसमें रागों और रागिनियों का शास्त्रीय विवेचन है। देव संगीतशास्त्र की पद्धति से परिचित थे। यह बात और है कि वे तानसेन के समान गवैये न हों। सम्भव है कि संगीत की ओर उनकी अभिरुचि स्वभाव ही ने हो या नन्पन्न पुरुषों की संगति में रहने से इनका प्रादुर्भाव हुआ हो। देव राजदरबारों में रहा चुके थे। उस समय के राजा संगीत और साहित्य दोनों का समान आदर करते थे। दरबारी के लिए तत्कालीन प्रथा के अनुसार संगीत जानना कुछ आवश्यक था था।

देव ने अपनी कविता में प्रेम का वर्णन नृप किया है। इनने हम हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे केशव के समान रसिक पुरुष थे। उनमें स्वाभिमान और गुणप्राप्ति की भी मात्रा अधिक थी। देव को नौभाग्यवश हिन्दू और मुसलमान दोनों राजाओं का आश्रय प्राप्त हुआ था। परन्तु मुसलमान आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने कभी भाषा का रूप नहीं बिगाड़ा।

देव का साहित्यिक परिज्ञान भी बहुत बढ़ा-बढ़ा था। व्याख्येय और ज्योतिषशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का उन्होंने अपनी कविताओं में बड़ा ही सुन्दर समिश्रण किया है। प्रसन्न-साहित्य में भी उनकी प्रमत्त गति थी। देवचरित्र के पुरुषोत्तम ने विदित होता है कि वे इतिहास भी थे। न्याय और नीति में भी स्वारस्यगन थे और धैर्यभी भी अत्यन्त

रहे होंगे; क्योंकि बिना इसके नीति और वैराग्यशतक ऐसे ग्रन्थों का निर्माण करना कठिन था ।

देवजी में पर्याप्त मौलिकता भी थी । यद्यपि उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह एक बँधी हुई पद्धति के अनुसार नायिका भेद पर लिखा है, परन्तु उसमें भी विलक्षणता है । नायिकाओं का वर्गीकरण देव ने अपने निजी ढंग पर किया है । उन्होंने छन्दःशास्त्र और चित्र काव्य पर भी लिखा है । कविकर्तव्यवश वे ऐसा करने के लिए विवश थे, अन्यथा वे चित्रकाव्य के समर्थक न थे । परकीया के प्रेम को भी वे प्रतिष्ठा की दृष्टि से नहीं देखते थे, पर उसका वर्णन उन्होंने बड़े ही अच्छे ढंग पर किया है ।

देव की कविता में स्वाभाविकता अधिक है । हमारी राय से स्वाभाविकता अतिशयोक्ति की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है यद्यपि साहित्यानुरागी अतिशयोक्ति को अधिक गौरव देते हैं । यह तो अपनी अपनी अभिरुचि पर निर्भर है ।

देवजी सर्वपाथीन प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे । आपने अपने समय की सभी प्रमुख शैलियों में कविता की है । नीति और वैराग्य सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे हैं और यहाँ तक कि एक नाटक भी लिखा है, यद्यपि यह नाटक किसी भी नाटकीय कम्पौटी पर नहीं कसा जा सकता । पिंगल के भी आप पूर्ण रूप से ज्ञाता प्रतीत होते हैं । आपने ३० से लेकर ३४ वर्ण तक की वनाक्षरी लिखी हैं और कई अन्य छन्दों में भी इसी प्रकार अपना

व्यक्तित्व दिखलाया है। आपकी उक्तियाँ बड़ी नरस हैं और उपमाएँ भी अपूर्व हैं। नायिकाभेद के तो आप आचार्य ही थे; क्योंकि शृंगार ही को आपने रसरज माना है। साथ ही साथ आपके नख-शिख और शृंगु वर्णन भी अपूर्व हैं। आपकी भाषा बड़ी प्रौढ़ है। पदचयन आपका नितान्त कोमल और मधुर है। मिलित वर्ण और कर्ण-कटुता तो उनमें कोसों दूर है। शब्दकोश भी आपका बहुत विशद है। इसलिए आपने जैसा भी अन्त्यानुप्रास लिया, उसका सुन्दर निर्वाह करके दिखलाया। वाक्य-विन्यास नितान्त सुन्दर है। भाषा और भावों का मनोहर नानजुत्य है। रूपक तो आपका नितान्त मनोरम है। हाँ, कहीं-कहीं शब्द अवश्य मोड़े गये हैं। इसका कारण अनुप्रास की दुरुहता है।

देव को सानुप्रास रचना बहुत पसन्द थी। इसी लिए उन्हें कभी-कभी शब्दों का अक्ष-भङ्ग भी करना पड़ता था। इसका परिणाम यह है कि उनकी भाषा में स्निग्ध प्रवाह न आ सका। कहीं-कहीं भाषा भावों का साथ भी नहीं दे सकी है। अलर-मैत्री लोहने की रक्ति ने आकर देव कहीं-कहीं अशक्त पदों का प्रयोग भी कर गये हैं। इसने वही कही वाक्य भी अधिन्यस्त हो गये हैं; परन्तु इनके साथ ही साथ जहाँ पर भाषा ने भावों का साथ दिया है, वहाँ पर इनकी रचना बड़ी सुन्दर हुई है। इसी लिए आलोचकों ने देव को गंजिमान का सर्वोष्ठ कवि माना है। जो निम-धनुषों की सम्मति नरेन्द्र माननीय

है कि जिस साहित्य-क्षेत्र में सूर, तुलसी सूर्य और चन्द्रमा के समान माने गये हैं, उसी में देवजी व्योममंडल के समान हैं। जहाँ तक साहित्यशास्त्र का संबंध है और पार्थिव उक्तियों और कल्पना की उड़ान का प्रश्न है, देव बहुत ऊँचे उठे हुए कवि हैं।

भावसाम्य

साहित्य के समालोचकों ने मौलिक रचनाओं की प्रशंसा की है, परन्तु इस मौलिकता का निर्वाह काव्यक्षेत्र में कहाँ तक किया जा सकता है, यह बात विचारणीय है। हमारा तो अनुमान है कि सर्वप्रथम रचना भले ही मौलिक कही जा सके; परन्तु उसके बाद की रचना में किसी न किसी रूप में उसकी छाया अवश्य देखने में आवेगी। इससे कोई महानुभाव यह कल्पना न कर बैठे कि हमें आजकल की किसी रचना में मौलिकता ही नहीं दृष्टिगोचर होती। मौलिकता की भी एक अलग माप है।

परवर्ती कवि अपने पूर्ववर्ती सहयोगी की रचनाओं से अवश्य प्रभावान्वित होता है और उसके अध्ययन का फल यह होता है कि उसकी कविता के भाव उसके हृदय-पटल पर अंकित हो जाते हैं। उनका संस्कार इतना दृढ़ जम जाता है कि जब वह लिखने बैठता है, तब उसके हृदय में वही भाव चठने लगते हैं और कभी-कभी वह उन्हीं के अनुसार अपनी रचना

भी कर डालता है। ऐसी रचना की गणना भावज्ञान्य की परिधि के अन्तर्गत की जाती है।

भाव-प्रदूषण करना कोई चोरी का काम नहीं है। यदि यह भी चोरी मानी जाय तो तुलसी, सूर, केशव, कालिदास और श्रीहर्ष तक इस अभियोग से मुक्त नहीं हो सकेंगे। हमने अपने तुलसी-तरङ्ग, सूर-संग्रह और केशव-कल्पद्रुम में इनके अनेक उदाहरण दे रखे हैं। जिन महापुरुषों को भाव-प्रदूषण की छटा देखनी हो वे हमारी उद्धृत रचनाओं में देखने की कृपा करें। तब तो उन्हें इस बात का विश्वास हो जायगा कि जिस प्रकार चित्त की चोरी कोई चोरी नहीं मानी जाती, वैसे ही भाव-प्रदूषण भी कोई चोरी नहीं है। चित्त की चोरी और कविता की चोरी मदा में होती आई है और सम्भवतः होती भी रहेगी। यदि पहले ऐसा न होता तो धीवृत अभिनवगुप्ताचार्य को अपने “ध्वन्यालोक” में इनके समर्थन में अपोलिखित व्यवस्था न देनी पड़ती—

यदपि तदपि रम्यं यत्तु लोकरस्य विज्जिनम्
 स्फुरितनिर्दिशोः सुखिभ्युन्नीते ।
 अनुगतमपि पूर्वज्जायया यन्तु नादकं
 सुकथ्यमानमप्यस्ति यत्तु नादकं ।

इसी प्रकार अंगरेजी साहित्य के आलोचकों ने भी कहा है। उनका निष्कर्ष यह है कि भाव विनीची की व्यवस्था सम्पूर्ण

नहीं हैं। जो कवि उनको सुन्दरता-पूर्वक व्यक्त कर सकेगा, उसी के वे कहलाएँगे। भावों का ग्रहण करना बुरा नहीं है। हाँ, उनको लेकर विगाड़ना अवश्य अपराध है। जहाँ तक उसकी रक्षा हो सके वहाँ तक अच्छा है और यदि कवि अपनी प्रतिभा के बल पर उसे और भी माँज दें तो क्या कहना है ! बात तो तभी है कि जिस भाव को ग्रहण किया जाय उसको ऐसी सुन्दरता से व्यक्त किया जाय कि उस पर अपनी मुद्रा अङ्कित हो जाय और वह चमकने लगे। यदि कवि प्रतिभा-सम्पन्न है तो हमारा विश्वास है कि वह जिस भाव को ग्रहण करेगा उसमें नूतनता लाकर उपस्थित करेगा, जिससे समझनेवालों को इस बात के कहने का साहस किसी तरह न हो सकेगा कि यह भाव अन्य कवि का है। उदाहरण के लिए हम यहाँ पर कविवर दास का एक छन्द भाव-ग्रहण के विषय पर उपस्थित करेंगे। पाठक देखें कि यह अपने मौलिक आधार से उत्कृष्ट है या नहीं।

कवियों और तुफ़ाँ में बहुत दिनों से संघर्ष चला आता है और कदाचिन् यह नदा रहेगा भी। कवि संसार को शान्ति और सुख का उपदेश दे सकता है, परन्तु वह तुफ़ाँ की घृष्टता को कभी मद्दन नहीं कर सकता। सामान्य कवियों की तो कोई बात ही नहीं है, गोस्वामी तुलसीदास ऐसे धीनराग महाकवि भी तुफ़ाँ की घृष्टता से रुष्ट होकर अन्न में कड़ते ही हैं —

खल उपहास होय हित मोरा ।

काग कहहिं कल कंठ कठोरा ॥

इसी बात को कविवर दाम और ही प्रकार से कहते हैं । उन्होंने अपने छन्द का भाव कविवर राम से लिया है; परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि दाम की रचना उससे कहीं उत्कृष्ट है । देखिए—

दृढादाकृष्टानां कतिपयपदानां रचयिता,

जनः स्पर्धालुश्चेदृष्ट कविना वश्यवचना ।

भवेदद्यः श्वो वा किमिह बहूना पापिनि कनौ,

घटानां निर्मातुस्त्रिभुवनविद्यातुश्च कलहः ॥

राम कवि

जुगनू भानु प्रभान के सागुहे, आपनों जोतिन के जम गैहै ।
गाव्हिह जाय रगधिप नौ, उदिये की बड़ी बड़ी बात बनैहै ॥
दान जुपै तुफ जोरनहार, कविन्द उदारन की नार पैहै ।
तौ करतार नौ और छुहार नौ, एक दिना भगरी बाढ़ि जैहै ॥

दान

१—रीतिरत्न के कवियों ने अपनी नारी प्रतिभा नाचिरा-
भेद के लियेने में लगा दी है । इन कवियों को अपना-
प्रकृति-निरीक्षण का न जाने कितना अनुभव था । स्त्री के
हृदय का कोई ऐसा विचार नहीं है, जिसकी इन्होंने सीमा-
न ही दी । कहीं तब बूँ, छियों के सम्बन्ध की कोई ऐसी

वात नहीं है जिस पर इन्होंने प्रकाश न डाला हो। शृंगार रस के अन्तर्गत नायिका-भेद का विषय वास्तव में रीतिकाल के कवियों के अवला-प्रकृति-निरीक्षण का उवलन्त उदाहरण है।

एक स्त्री अपने घर में बैठी थी। नाइन उसको स्नान कराने के लिए आई। उसके अङ्ग की स्वाभाविक सौन्दर्यजनित लालिमा ईश्वर के रङ्ग को भी मात करनेवाली थी। उसको देखकर नाइन को आश्चर्य होने लगा और वह चुपचाप उसकी पड़ी में चौटी तक के सौन्दर्य को देखती रही। नाइन की यह चेष्टा देखकर उस स्त्री को भी हँसी आ गई। इस भाव को कविवर देव ने कैसी सुन्दरता से अङ्कित किया है।

आई हुती अन्हवावन नायन, सौँधे किये पग सूँधे सुभायनि ।
कंचुकी खोलि धरी उधटैवे को, ईश्वर के रंग सी सब ठायनि ॥
'देवजू' रूप की रासि निहारत, पायँ ते सीम लीं सीस ते पायनि ।
हैं रही ठौरहि ठाढ़ी ठगी भी, हँसै कर ठाढ़ी दिखे ठकुरायनि ॥

कविवर बिहारीलालजी इस भाव पर इसमें पहले लिख चुके थे। उनके दोहे की जैसी प्रशंसा संजीवनभाष्यकार श्रीयुत पं० पद्मसिंह शर्मा ने की है वह यथार्थ है। बिहारी के दोहे देखिए—

कातर मी पड़ीन की, लाली देखि सुभाय ।

आई जावक देन की, आपु भई बेसाय ॥१॥

पायन जावक देन की, नायन बैठी आय ।

पनि पुनि जानि महावरी, पड़िहि भीड़न जाय ॥२॥

नायिका की पंढियों की स्वाभाविक लालिमा के विषय में इसमें अधिक और क्या कहा जा सकता है। और कवियों ने भी इसी भाव पर लिखा है; परन्तु वे विटारी को नहीं पाने। वास्तव में विटारी का और ही चैदम्भ्य है।

कुछ नमूने और भी देखिए—

नायन पायन जाचक दैन की, प्राण प्रिया टिंग आई उतावरी ।
लाड़िली के टिंग बैठि हरे, मुख में पद-कंज गहे मुखि भावरी ॥
लै नवला पग को कर पै, अरु मे 'रन्दिश' न भेद लयावरी ।
लाली विलोकि थकी धिर हँ, तिय पंढियें गीइति जानि सावरी ॥

—रन्दिश

रही पूजिये को पवनी गर मैं, नव नागरि पै बह जाय गई ।
पग धोय गुलाब के नायनि मी, दोउ पंढिन ही की सुखाय रही ।
कर कंज पै जाचक धारि कै नागि, लगारहे की मन लाय रही ।
ठहुराइन के लगि पायनि की, मनि नायनिदा की रेखाय रही ।

—मंदल

मंद ही खपे ते इन्द्रबाहू के परन होत,
प्यासी के परन नयनीन हँ मे नरमै ।
सहज जुनाइ जिनही चिन्तहि 'सामोमान',
औरन की पग पविहू की मनि भग्गै ॥
पड़ी टहगारन की नायनि सहज लख,
कोतर मौ रंग होनि जल दरदर मैं ।

दीनी है कि दीवे है बिचारै सोचै वार-वार,

वावरी सी है रही महावरी लै कर मैं ॥

—काशीराम

नायिका के सौकुमार्य का ऐसा सुन्दर वर्णन देखकर भला कविवर दास से कैसे रहा जाता ? ऐसे ललित भाव को ग्रहण करने का लोभ संवरण कर सकना भी एक बड़ी बात है । दास का भी एक छन्द देखिए—

आरज आवन दासी कह्यो, उठि बाहर तैं गई भीतरैं प्यारी ।
त्यो महि पै पग धारत ही, दोऊ ऐँड़िन छाँय रही अरुनारी ॥
जावक दीन्ह्यो कि दीन्ह्यो नहीं, सो विलोकि विलोकि कै नाइनि हारी ।
प्यारी कही अरी दाहिनै दै, मोहि जानि परै पग वाम है भारी ॥

इस सौकुमार्य का भी कोई ठिकाना है । पृथ्वी पर पैर धरते ही ऐँड़ी इतनी लाल हो जाती है कि बेचारी नाइन को बार बार देखने पर भी इस बात का पता नहीं लगता कि इसमें जावक दिया है अथवा नहीं । उसको इस प्रकार कि-कर्तव्यविमूढ़ देखकर ठकुराइन बतलाती है कि देख दाहिने पैर में जावक दे, इसमें नहीं लगा है । इसका कारण यह है कि यह बायें पैर की अपेक्षा कुछ हल्का है । और वह जावक लगने के कारण भारी है । धन्य है दासजी की विदग्धता और पैनी दृष्टि ।

ये सब छन्द प्रायः एक ही भाव पर लिखे गये हैं, परन्तु इन सब की विशेषता और सौंदर्य अलग-अलग हैं । संचारी भावों

की भिन्नता के कारण इन सबमें अपना निजी सौन्दर्य आ गया है। देवजी का छन्द तो अपूर्व है ही और बिहारी के विषय में जो कुछ कहना था उसे पंडित पद्मसिंहजी कह ही चुके। हाँ, यहाँ दासजी के विषय में इतना ही कह देना है कि यह छन्द भी अपने ढंग का निराला है और इसमें अन्य कवियों की रचनाओं की अपेक्षा साहित्य-सौंदर्य की किसी प्रकार न्यूनता नहीं होने पाई है।

२—नायिका के गात्रों में स्वाभाविक सौन्दर्य का स्थायी निवास होता है। मधुर आकृतियों को मंडन (शोभा-मानकी) में कोई विशेष लाभ नहीं, तथापि इन मंडनों के रंगों में उनकी गात्रप्रभा के कारण परिवर्तन उपस्थित होते ही रहते हैं। तद्गुण अलंकार का आशय लेकर कवियों ने इस विषय पर बहुत कुछ कहा है। कविवर देव का वर्णन देखिए—

नीचे को निहारत, नगीचे नैन, अवर,

दुधीचे परपी रयानारन आभा अटलन को ।

नीलमनि भाग है परमराग है पै,

गुनराज है गत दिख्यो है निकट पन को ।

'देव' दिहसन दुनि दंडन सुहाव जोनि,

बिमल सुख हीराज्यत गटवन को ।

धिरजिर्मधरकि धिर, धाने पर धाने कोनि,

धाने धरुन नट मोती नटवन को ॥

इसी भाव पर दास की कारीगरी देखिए—

पन्ना-संग पन्ना है प्रकासित छनक लै,
 कनक-रंग पुनि ये कुरगनि पलतु है ।
 अधर ललाई लावै लाल की ललकि पाय,
 अलक फलक मरकत सो रलतु है ।
 ऊदौ-अरुनो है, पीत-पट लहरौ है ह्रै कै,
 दुति लै दोऊ को 'दास' नैननि छलतु है ।
 समरथु नीके बहुरूपिया लौं तहाँ ही मैं,
 मोती नथुनी को बर वानो वदलतु है ॥

अब इसी सम्बन्ध में बिहारी की बहुज्ञता देखिए—

अधर धरत हरि के परत, ओंठ-दीठि-पट-जोति ।
 हरित वाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष-दुति होति ॥

बिहारी ने क्या ही सुन्दर इन्द्रधनुष देखा है। पावस-
 कालीन आकाश का इन्द्रधनुष इसकी क्या समता कर सकता
 है। यह धनुष तो भगवान् कृष्ण की मंजुल मुरलिका और
 ओठों के संयोग से बना है।

अब सेवक की सौम्यता देखिए—

देखे सुगन्धित बेले के देत, भये कर लेत जपादल वैसे ।
 त्यों महि डारे परे पग पीठ, धरे रंग सोनजुही महुँ जैसे ॥
 'सेवक' हाँसी लगी उलझारि, निहारि लखे पै लगे सबै लैसे ।
 दोने किये किधौं लोने अबै पै, दिये नये मालिन फूल धौं कैसे ॥

यह सुग्धा का चरुण है । कोई सुग्धा एक दिन अपनी चाटिका में टाँहलने के लिए गई । मालिनी ने उसे स्वेत पुष्प लाकर दिये । वे फूल बेले के थे; क्योंकि उनमें बेले की सुगन्ध आ रही थी । परन्तु ज्योंही वे सुग्धा के करसम्पुट में रक्खे गये, त्योंही हथेली की अरुणता के कारण जपापुष्प के समान दिखलाई पड़ने लगे । अंजलि में पुष्प ढालने समय कुछ तो उनके पैर और पृथ्वी पर पड़े थे, वे उनमें स्पर्शजुही के फूलों के समान दिखलाई पड़ने लगे । एक ही प्रकार के फूलों को कई प्रकार के रंगों में देखकर सुग्धा को कैतृहल होना स्वाभाविक था । उसने तत्काल अपनी अंजलि के फूलों को, चामनविक रहस्य जानने के लिए, उलगाया तो फिर वे ज्यों के त्यों दिखलाई पड़ने लगे । परन्तु सम्पुट में आते ही आते फिर लाल हो गये । बिलक्षण व्यापार था । सुग्धा को मन्देह हो गया कि अवश्य इन फूलों में कोई जादू किया गया है । कैसा ललित भाव है । पटर पर भिन्न प्रमत्त हो जाता है ।

थाग में ठाढ़ी सुदान भरी, अनुराग नों दान करें चढ़ें करें ।
मालिनी माल दई सुनि ल्याय, बड़ी रांच यों गर में चढ़ें मेरे ॥
'मेवय' दीठि पिराय दिग्याय, बड़ी सुनि ल्याई यथा रांच मेरे ।
घोन्ती जुही की हनें पदि कै, लई मोनजुही की पदि गर मेरे ॥

—मेवय

पालि ही नूँहि यदा की मी मी, गज-मोचन की पदिसी अवि प...
आई यहाँ मे इहाँ सुन्दरान की । नग मई यमुना गढ पाया ॥

न्हात उतारी हौं 'वेनी प्रवीन', हँसैं सुनि चैनन नैन रसाला ।
जानति ना अंग की बदली, सब सेां बदली-बदली कहै माला ॥

—वेनी प्रवीन

कवियों को त्रिवेणी की कल्पना बहुत प्रिय है। जहाँ कहीं उनको सितासित वर्णों का सम्पर्क मिला और साथ ही साथ कहीं लालिमा का भी आभास हुआ तो फिर उन्हें वहाँ तत्काल त्रिवेणी ही दिखलाई पड़ती है। कविवर पद्माकर ने किसी बाला को सरोवर में स्नान करते देखा। कवि की दृष्टि बड़ी पैनी होती है। उसके बालों के निकट का पानी श्यामता लिये हुए था, हीरों के हार के निकट का पानी स्वच्छ था और पैरों में जावक के धुल जाने से कुछ अरुणिमा भी उसमें आ गई थी। बस, इतनी ही सामग्री त्रिवेणी बनाने के लिए पर्याप्त थी। देखिए—

जाहिरै जागति सी जमुना, जब बूड़ै वहै उमहै वह बैनी ।
त्यो 'पदुमाकर' हीर के हारनि, गंग-तरंगनि सी सुख दैनी ।
पायनि के रँग सौँ रँगि जात, सो भाँति ही भाँति सरस्वती सैनी ।
पैरे जहाँई जहाँ वह बाल, तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिवैनी ॥

कविवर लछिरामजी ने ऐसी त्रिवेणी मिथिला में देखी थी। लछिरामजी के वर्णन में अपूर्व सौन्दर्य है। देखिए—

लालिमा श्री तरवानि के तेज तै, सारदा लौ सुपमा की निसैनी ।
नूपुर नील मनीन जड़े जमुना बहैं जौहर सी सुखदैनी ।

त्यों 'लछिराम' छटा नख नौल तरंगिनि गंग-प्रभा फल पैनी ।
मैथिली के पद पंकज व्याज, लसै मिथिला मग मंजु त्रिवेनी ।

यह ऐसा ललित भाव है कि इन पर प्रायः सभी लिखने की इच्छा रखते हैं ।

साहित्यदर्पण के यशस्वी टीकाकार स्वर्गीय पण्डित शाल-
ग्रामजी साहित्याचार्य ने इसी विषय पर एक श्लोक लिखकर
अपने ग्रन्थ का मङ्गलाचरण किया है ।—

आशोणाकोणदेशादिकसितकुमुदामोदिनी पादर्वभागान्,
नीलेन्द्रकान्तिकान्ता कलिरनुपहरा मंसरन्ती च मध्यात् ।
व्योमस्थैव त्रिवेणी त्रिदशवशकरी देवतेषु त्रिस्था,
धीन् संस्कारान् धमन्ती जयतु नयनयोः कापि कान्तिर्भवान्याः ॥

३—अवला को चाहे जितना कष्ट हो जाय, सो नो उन्ने
माल होता है, परन्तु अपने पति का अन्यस्त्रीरग होना कदापि
माल नहीं होता । कदाचिन् इसी मनाएति के कारण सपत्नियों
में पारम्परिक विद्वेष बना रहता है; परन्तु देवजी की शान्तिता में
एतत्त्वपूर्णता है । जहाँ अन्य सपत्नियाँ अन्यपत्नी की रति के
मन्देह भाव पर अपने पतियों को कटु वचन नक करने लगती
हैं, वहाँ देव की शान्तिता दिवनी संयत भाषा में अपने उद्गार
प्रकट करती हैं, वह देवने ही बनता है । इससे हमी में
सन्तोष है कि पति का बन्धन हो, चाहे वह उन्ने दुर्जन के वा न
है । नारी जानि की दिवनी विवशता हमने प्रकट होनी है ?

माथे महावर पाँय को देखि, महावर पाप सुढार दुरीपै ।
 ओठन पैठ नवैँ अँखियाँ पिय के हिय पैठन पीक धुरीपै ।
 संग ही संग बसौ उनके, अँग अंगनि 'देव' तिहारे लुरीपै ।
 साथ मैं राखिए नाथ ! उन्हें, हम हाथ में चाहती चारि चुरीपै ।
 —देव ।

इसी भाव पर निम्नलिखित छन्द भी कहा गया है ।

भावै जितै उत ही रहौ नाथ ! पुजावौँ सवै अभिलापनि ही के ।
 रंचक नेह सौँ मोहि निहारि, रहौ चहै संग वहै युवती के ।
 केवल चाहियै मोहि सुहाग, लला सुनो साँचे मनोरथ जी के ।
 मेरे रहौ चहै वाके रहौ, पै जितै रहौ लाल रहौ तुम नीके ।
 —अज्ञात कवि

मतिराम का भी एक छन्द इसी भाव पर है । उन्होंने इस भाव को कैसे व्यंग के साथ व्यक्त किया है । सापराध पति के लिए कितना सुन्दर व्यङ्ग है ।

कोउ नहीं बरजै मतिराम, रहौ उत ही जित ही मन भायो ।
 नाहक सौहैं हजार करौ, तुम तो कतहूँ अपराध न ठायो ॥
 सोवन दीजै न दीजै हमैं दुःख, काहे वृथा रस वाद बढ़ायो ।
 मान ही नाहीं रह्यो मनमोहन, मानती होय सो मानै मनायो ॥

यद्यपि यह वर्णन खण्डिता का न होकर मानवती का है, तथापि बड़ा ही सुन्दर है । इसमें मतिरामजी की मुद्रा स्पष्ट रूप से अङ्कित है ।

४—स्त्रियों में उत्सुकता और जिज्ञासा की मात्रा बहुत अधिक हुआ करती है। किसी अपूर्व बात की भनक उनके कान में पड़ जाय, तो ये जब तक उसका पूरा रहस्य न जान लेंगी तब तक उन्हें चैन न आयेगी। क्या करें बेचारी अपने स्वभाव में विवश हैं। लाख अपने चित्त की वृत्ति को दबावे पर वह दबावे नहीं दबती। सड़क पर यदि कोई ढोल बजाकर कुछ गाते हुए निकले और उसका शब्द स्त्रियों के कानों में पड़ जाय तो वे अपना आवश्यक कार्य छोड़कर उसे देखने अवश्य आवेंगी और जब तक वे उसके विषय में कुछ जान न लेंगी, तब तक उनका चौतुहल शान्त न होगा।

भगवान् कृष्ण ने वंशी बजाई। उन वंशीरव में ऐसा आरुपण था कि ध्यानावस्थित मुनियों तक की ममाधि टूट जाया करती थी। फिर गृह में रहनेवाली गोपियों का क्या हाल हो सकती है, वह पाठकों के लिए अनुमान करने की बात है। देव ने इसका चित्रण निम्नलिखित छन्द ने किन सुन्दरता के साथ किया है—

घोर तमनीजन विपिन तमनी जन हैं,
 निकसी निकर निनि आनन्द अनंरु में।
 गरी न पलंक गृह तरनि मयंकमुनी,
 पंकज - पवन धारं भागी निनि - पंक में ॥
 भूपति भूलि पैरो उटे 'कुहू' 'देव',
 नले सुजगल प्रविष्ट विधि पंक में।

सिगरी भगानी पहिचानी प्यारी मुसकानी,
छूटिगो सकुच सुख लूटि सरसानी है ॥

७—विप्रलम्भ शृंगारान्तर्गत विरह-वर्णन साहित्य का एक मुख्य अङ्ग है। जिस कवि में जितनी प्रतिभा होती है वह उतने ही ठाठ से उसका वर्णन करता है। हिन्दी-साहित्य में वियोग-वर्णन की प्रकारान्तर से परिपाटी सी है। इस वर्णन में प्रायः नायिकाओं का ही विरह-वर्णन किया जाता है, नायक का कम किया जाता है। विरह-वर्णन के इस विषम विभाजन का कोई स्पष्ट कारण परिलक्षित नहीं होता। संस्कृत साहित्य में जहाँ नायिकाओं का विरह-वर्णन है, वहाँ नायकों का भी है। आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि ने भगवान् रामचन्द्र का विरह-वर्णन बड़ी सुन्दरता के साथ किया है। महाकवि कालिदास ने भी मेघदूत में विरही यक्ष का बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है और उसकी कृशता का निरूपण करते हुए कहा है—

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी,
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।
आपाठस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुम्,
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥

विरही यक्ष की कृशता की व्यञ्जना इससे सुन्दर और क्या हो सकती है? विहारी के वर्णन के समान इसमें

कोरी अत्युक्ति नहीं है। इसी भाव पर एक छंद कविवर
देवजी का भी है—

लाल बिना धिरहाकुल बाल बियोग की जाल भई भुकि भूरी ।
पौन औ पानी नों प्रेम कहानी मी पान व्यौ प्राननि रागन हरी ॥
'देवजू' आजु मिलाप की औधि नो चीनन देखि बिनैय बिसूरी ।
हाथ उठायो उठावये कौ उड़ि काग नरे गिरी पारिक चूरी ॥
देव की नायिका कितनी कृश हो गई है। हाथ उठाने की
चृद्विया गिर पड़ती हैं। विरह ऐसा ही होता है।

८—संस्कृत-साहित्य के कवि पुष्प-विरह का भी वर्णन करते
हैं, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं। एक कवि भगवान् रामचन्द्रजी
के विरह का चित्र इस तरह खींच रहे हैं। इनमें अर्धान्तर-
नर्त्तागत घातयध्वनि की कैसी सुन्दर छटा है। और राम के
साथ गुण और वृत्ति का कैसा सुन्दर नानुसंग है। वर्णन के
अनुकूल मंदाक्रान्ता वृत्त भी चुना गया है।

नामं काश्याभिननमपी बिन्दयो पाप्मपातान्,
मेजः पान्तापदमवशाक्षयः शानदैर्गन् ।
इत्यं नष्टं विरहयुषमन्मदापाप मुख्यम्,
जीवत्येवं वृत्तिशक्तिनो रामचन्द्रः शिमेनम् ॥
—उपदेव

नामन ही नों मनीन गयो पर पानुन ही नद नीर गयो हरि ।
मेज गयो गुन नै खननो खर भूनि गई मन की दहना करि ॥

‘देव’ जियै मिलिवेई की आस कि आसहू पास प्रकास रह्यो भरि ।
जा दिन ते मुख फेरि हरे हँसि हेरि हियो जू लियो हरि जू हरि ॥

—देव

भगवान् रामचन्द्र की सीता के विरह में कैसी दयनीय दशा हो रही है । शरीर के पाँचों तत्त्व जहाँ से आये थे वहीं धीरे-धीरे जा रहे हैं । केवल सीता के पुनर्मिलन की आशा मात्र से भगवान् प्राण धारण करने में समर्थ हो रहे हैं । आशातन्तु सूक्ष्म होते हुए भी वास्तव में बड़ा प्रबल होता है । इसी का आश्रय लेते हुए विरही विषमबाण की वेदना को सहते हुए भी जीवित रहते हैं । यह आशातन्तु भी कविवर्णन का एक सुन्दर विषय है । पहले कालिदास को देखिए—

ताञ्ज्वावश्यं दिवसगणनात्परा मेकपत्नीम्,
अव्यापन्नामविहृतगतिर्द्रव्यसि भ्रातृजायाम् ।
आशापाशः कुसुमसदृशः प्रायशो ह्यङ्गनानाम्,
सद्यःपाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥

—मेघदूत

तरी भाभी दिन गिन रही एकभर्तावती को,
देखेगा तू रुक न पथ में जा वहीं जीवती को ।
होता स्नेही हृदय जिनका पुष्प सा शीघ्रपाती,
आशा प्रायः प्रियविरह में स्त्री जनों को जिवाती ।

इसी भाव पर कविवर भवभूतिजी का छन्द देखिए।
आशातनु पर आपकी उक्ति कैसी मार्मिक है।

दैवान् पश्येः जगति विचरन् मत्प्रियां मालती चेत्,

आश्वासनादौ तदनु कथय माधवीयामवस्थाम् ।

आशातनुर्न च कथयता साप्यनुच्छेदनीयः

प्राणघ्राणं कथमिदं करोत्यावनादशः न एकः ॥

—मालतीमाधव

इसी भाव पर कविवर मंगनाथ का एक छन्द देखिए—

दिसि दिनि टोलत कलोल भरे मेघ तुन,

ताप निरधारत मल्लि वरमायके ।

मालती कहै जो राखरे धी क्षीष्टि परि जाय,

कहियो नैदेमा यो दया की नरमायके ॥

तेरे ही वियोग में यो व्यथित भयो है नाथी,

भासि गई नैननि पौ निदिता विहाय कै ।

खाननि की पाम पौनि राखन है प्राननि पौ,

नाहि ज्ञाय लीजै सुरत का दूनायके ।

इसी भाव पर कविवर मलयनाथ का एक छन्द देखिए—

पूजत देन विदेसन मैं जन देखियो जो कहै मालती प्रानि ।

भीरव पारो पैदाय नरो दूना नाथव को कहि दीखियो मारी

देखियो खान पौ मनु न मोरियो मरियो कही विदेस मरारी

पारी के पूर महारे खान भन जायत खान न मोरन मारी ॥

एक संस्कृत-कवि ने और भी कहा है—

आशापाशैः सखि नवनवैः कुर्वती प्राणबन्धम्
है सखी प्रानन राखि रही तिया आस की पासनि बाँधि भई नई ॥

९—भगवान् कृष्ण के संकेत पर चतुर दूतिका राधिका को संकेत-स्थल पर लताकुंज में बुला लाई और भगवान् से कहने लगी कि देखो इनका वैसे ही सत्कार करना जैसे शंकर ने शंकरी या श्रीपति ने लक्ष्मी का किया है। इस भाव पर पहले दासजी का छंद देखिए—

लेहु जु ल्याई हौं गेह तिहारे, परे जोई नेह सँदेस खरे मैं ।
त्रैयै भुजाभरि मेटौ बिथानि, समैयै जू तौ सब साध भरे मैं ॥
सम्भु ज्यौं आधहि अंग वसाओ, लगाओ कि श्रीपति ज्यौं हियरे मैं ।
'दास' भरो रसकेलि सकेलि, सु आनँदबेलि सी मेलि गरे मैं ॥

नैननि के तारनि में राखौ प्यारे पूतरी कै,

मुरली ज्यौं ल्याय राखौ दसन वसन मैं ।

राखौ भुज बीच बनमाली बनमाला करि,

चन्दन ज्यौं चतुर चढ़ाय राखौ तन मैं ॥

'केशवराय' कल कंठ राखौ बालि कठुला कै

करम करम कैहूँ आनी है भवन मैं ।

चंपक कली सी वाल सूँघि सूँघि देवता सी,

लेहु प्यारे लाल, इन्हें मेलि राखौ तन मैं ॥

—केशव

देव की उक्ति देखिए—

लेहु लला उठि लाई हो बालहि लोक की लाजहि नौ लरि राग्यौ ।
फेरि इन्हें सपनेहु न पाइयत, लै अपन उर में धरि राग्यौ ॥
'देव' लला अवला नचला यह, चन्द्रकला कटुला करि राग्यौ ।
आठ हू मिद्धि नवौ निधि लै, घर बाहर भीतर हू भरि राग्यौ ॥

ये तीनों छंद प्रायः एक ही भाव पर लिखे गये हैं। इस विषय की रचना पर चरित्ररक्षा के ठेकेदार 'आलोचक भले ही आपत्ति करें', परन्तु यह वर्णन कोई नई बात नहीं है। इसका अपराध केवल रीतिकालवाले कवियों के ऊपर ही नहीं लगाया जा सकता, प्रत्युत यदि यह वास्तव में अपराध ही है तो संस्कृत-साहित्य के बड़े-बड़े आचार्य भी इस दोष से मुक्त न हो सकेंगे; क्योंकि वही तो हिन्दी कवियों के पथप्रदर्शक हैं। जैसा मार्ग उन्होंने प्रशस्त कर दिया, कालान्तर में हिन्दी के कवियों ने उसी मार्ग पर पदार्पण किया। इसमें हिन्दीवानों का कोई अपराध है ही नहीं।

१८—नायिकाभेद के अन्तर्गत कवियों ने ग्यारहवाँ का उल्लेख किया है। ग्यारहवाँ का तत्पर इस प्रकार कहना सही है—

निद्राकषायदुष्टजीवमलकनेत्रः

नारीनयनविशेषविचित्रतातः

उदय होत दिननाथ इत, उत अथवत निसिराज ।

द्वैघण्टायुत द्विरद के छवि धारत गिरि आज ॥

केशव ने अपने छन्द का भाव इस श्लोक में दिया है ।

कीर्णान्धकारालकशालमाना,

निबद्धतारास्थिमणिः कुतोऽपि ।

निशापिशाची व्यचरद्धाना,

महान्त्युलूकध्वनिफेकृतानि ॥

—त्रिदेववाग्भट्ट

महाकवि केशवदास रात्रि का वर्णन करने बैठे । आपके अनोखी बात सूझी —

प्रेत की नारि उ्यों तारे अनेक, चढ़ाय चलै चितवै चहुँ घाती ।
कोढ़िनि सी कुकुरे कर कंजनि, 'केशव' सेत सबै तन ताती ॥
भेटत ही बरै ही अबही, त्यों गई ही सुखै सुख साती ।
कैसी करौं अब कैसे बचौं, बहुयो निसि आई किये मुखराती ॥

देवजी प्रभात का वर्णन करने लगे । कवियों को नायिकाओं से प्रायः अधिक सहानुभूति होती है । सहृदय ठहरे, क्या करें, अबलाओं का दुःख देखा नहीं जाता । केशव ने रात्रि को प्रेत की नारी और कोढ़िनी बनाया तो देवजी ने प्राची दिशा को पिशाचिनी बना डाला ।

वा चकई को भयो चितचीतो, चितौति चहूँदिसि चाय सौं नाँची ।
हूँ गई छीन कलाधर की कला, जामिनी जोति मनौ जम जाँची ।

बोलत घैरी बिहंगम 'देव', सँजोगिनि की भई सम्पति काँची ।
लोहू पियो जो बियोगिनि को, नो क्रिये गुन्य लाल पिनाचिनी प्राची ॥

संयोगिनी की सम्पति काँची करने के अपराध पर वाग्वच
में प्राची दिशा को गद्दी उपाधि मिलनी चाहिए थी ।

और भी—

दीसै करेजी बियोगिनी की, घनश्याम के राग के रंगनि मँची ।
कामरी कारी पै रंग चढ़ र्या, रवि देखि लजानि छिन्नै की प्राची ॥
तैं मदिरा रस ग्याची मनो, कहै माँच हँ अगिन नाची पिनाची ।
प्राची में आजु मकारंछि ते, किर्धा होरी कहै पड़े भूम की माची ॥

—मदनमोहन

चेनी प्रवीन ने प्राची दिशा पर कुछ कृपा की । उन्होंने
इसे पिशाची नहीं बनाया : केवल सपनों बनाकर छोड़ दिया ।
अपनी राग में चेत्तीजी ने खन्ना छोड़ दिया । परन्तु नियों की
सपनों, पिशाचिनी नहीं, राक्षसिनी एवं जादूिनी ने भी मदरस
प्रतीत होनी हैं ।

बहु सोम बिदेस बिनाय बिबा, परै आसन को नरी आली भई ।
परदेस असेस बलैस कथा, नय भागी यथा घननाली भई ॥
होसिके कहै 'चेनी प्रवीन' जयै, रस-हेलि बला की जगली भई ।
नय बा दिसि परद पुरन में लगरी, धैरिनि नौनि नी आली भई ॥

यह भाव काँच-कुल-कुल-कुल-कुल-कुल की धारिणीय का है ।
उन्होंने 'अंतर्गत' में उसे इस प्रकार लिखा है—

समायाते कान्ते कथमपि च कालेन बहुना,
 कथाभिर्देशानां सखि रजनिरर्धं गतवती ।
 ततो यावल्लीलाविरहकुपितास्मि प्रियजने,
 सपत्नीव प्राची दिगियमभवत्तावदरुणा ॥

यह भाव बड़ा ललित है । इसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर कविवर रामरत्नजी ने भी इस पर एक सवैया लिखा है ।

१२—वंशीधर की तान में भी न जाने कौन सा आकर्षण था कि जिसे सुनकर गोपांगनाओं को आत्म-विस्मृति हो जाया करती थी । जाती थीं वे दही बेचने परन्तु बेचती थीं अपना हृदय । इस भाव को कविवर देवजी ने कैसी सुन्दरता से चित्रित किया है ।

पुकारि कही मैं दही कोउ लेउ, यही सुनि आइ गये इत धाय ।
 इतै कवि 'देव' चितै ही चले, मनमोहन मोहनी तान सी गाय ॥
 न जानति और कछू तब ते, मन माहिं वही पै रही छवि छाया ।
 गई तौ हुती दधि बेचन काज, गयो हियरा हरि हाथ बिकाय ॥

इसी भाव पर कविवर 'दास' ने निम्नांकित छन्द लिखा है—

जिन्हें मोहन काज सिंगार सजे, तिनहीं के सरूप लोभाय गई ।
 न मुठी को चलाय सकी तिनपै, तिनहीं के मुठी में समाय गई ।
 वृषभानु-लली की दसा कहै 'दास', ठगौरी किये ही ठगाय गई ।
 वरसाने गई दधि बेचिवे को, विन दामन आप बिकाय गई ॥

१३—विद्योग-वर्णन करने में हिन्दी-कवियों ने हृद कर दी है। विद्योग की वारह अवस्थाएँ होती हैं, उनमें गरम के वर्णन का रीतिकारों ने निषेध किया है। परन्तु अन्य दशाओं का वर्णन प्रायः सभी रीति-ग्रन्थों में उपलब्ध है। इनमें एक दशा का नाम उद्देग है। जब प्रेमिका चित्त में अत्यन्त व्याकुल होने के कारण निराश्रित हो जाती है जो उसकी विद्योगावस्था का उद्देग कहते हैं। कविवर विद्यासीलान ने भी एक ऐसी विरह-विधुरा यनिता का वर्णन किया है, जिसकी विरहावस्था उद्देग तक पहुँच गई थी।

हँसी घौरी विरह भ्रम, कै घौरी नव गाँव,
कहा जानि ये कहत हैं, मनिहि मोनकर नाँव ॥

नायिका शीतकर के गुणों की आलोचना करती है। उसको इसके नामकरण पर आपत्ति है। या तो मृगभास होकर धिप फैलता है। लोग इसे शीतकर क्यों कहते हैं, जब कि यह विरह-विधुरा यनिताओं को जलाये जलता है? देवता ने इस विषय पर बहुत हँस रखा है। परन्तु यहाँ पर हम उनका पक्ष ही छोड़ देयेंगे।

रैनि मोई दिन इन्द्र दिनेम, जोनाई है पाम बनो दिप मई ।
कानि मेज सुगन्ध उखलनि मूल बहे मनु मेज खो मई ॥
पातर भीतर भैरवो मूल राखै परे 'दि' मे पान मई ।
हँ ही सुगन्धी हो भूडे मई, बई सोपन हो मरगमम मई ॥

और भी —

सिन्धु के सपूत अरु सिन्धुतनया के बन्धु,
 आकर पियूष औ प्रभा के समुदाई के ।
 कहै पदमाकर गिरीस के चढ़े हौ सीस,
 औषधि के नाथ कुल कारन कन्हारै के ।
 ऐरे मतिमन्द चन्द आवत न तोहि लाज,
 बनिता वियोगिनि सतावत अघाई के ।
 हूँ के सुधाधाम काम विष कौ बगारै,
 अरु हूँ कै दिजराज काज करत कसाई के ।

—पद्माकर

और भी —

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोः,
 द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु ।
 विस्मयति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैः,
 त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोपि ॥

—कालिदास

चन्द्रमा पर यों तो सभी कवियों ने एक से एक बढ़कर छन्द कहे हैं । परन्तु इन सबमें महाकवि श्रीहर्ष का चन्द्रोपालम्भ अद्वितीय है । संस्कृत और हिन्दी-साहित्य में कहीं भी चन्द्रमा पर ऐसी मार्मिक उक्तियाँ देखने में नहीं आवेंगी ।

१४—श्रीष्मकालीन ज्योत्स्नावती रात्रि में अपनी मन्त्रियों के साथ राधिका सौध में विहार कर रही थीं। वह स्फटिक-शिला का बना हुआ था। उसका फर्श भी नितान्त उज्ज्वल था। राधिका की समवयस्का चनिताएँ उनके चारों ओर खड़ी थीं। ऊपर आकाश में भी यही दृश्य था। चन्द्र-प्रकाश के कारण आकाश स्वच्छ हो रहा था। चन्द्रमा को नक्षत्रावली घेरें हुए थी। देवजी को यह नमक पड़ा कि आकाश नहीं है, यह तो विमल दर्पण है जिसमें राधिका और उनकी मन्त्रियों का प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ता है। बहुत दूर होने के कारण ये प्रतिबिम्ब कुछ छोटे मालूम होते हैं। कैसी सुन्दर उक्ति है। यह कल्पना देव जैने कवियों के ही हृदय में आ सकती है—

फटिक-मिलानि से। सुधार्यों सुधा-मंदिर,

उदधि दधि के से अधिकारि जगै अमंद ।

बाहर से भीतर लौ भीति न देखए 'देव'

दूध के से केन पैलो आंगन फलसन्द ॥

तारा भी मरनि तामें टाढ़ी मिलमिलि गोनि,

सोचिनि कौ देखिनि मिली मन्त्रिका कौ मरन्द ।

आरमो ने अमन्द में आभा मो जगसी रंग,

जगसी राधिका कौ प्रतिदिन्द सौ मरन्द ॥

इसी भाव पर कविवर दासजी ने अरुना एवम् निर्माण किया है।

आरसी कौ आँगन सोहायो छबि छायो,
 नहरनि मैं भरायो जल उज्जल सुमनमाल ।
 चाँदनी विचित्र लखि चाँदनी बिछौना पर,
 दूरि के चँदोवन को बिलसै अकेली बाल ॥
 'दास' आसपास बहु भाँतिन विराजै धरे,
 पन्ना पोखराज मोती मानिक पदिक लाल ।
 चन्द्र प्रतिबिम्ब सों न न्यारो होत मुख, औ न
 तारे प्रतिबिम्ब ही ते न्यारे होत नग जाल ॥

१५—एक गोपिका से भगवान् कृष्ण की घनिष्ठता हो गई थी । उसकी अन्य सखियाँ उसे इस प्रवृत्ति के लिए लांछित करने लगीं । बेचारी चुपचाप सबकी सुन लिया करती थी । कुछ कहती नहीं थी । सहनशीलता की भी कुछ हद होती है । अन्त में सखियों के नैतिक आक्षेप से तङ्ग आकर वह कहने लगी—

वीस्यो बंस विरद में बौरी भई बरजति
 मेरे बार बार कोई पास आनि बैठै, जनि ।
 सिगरी सयानी तुम, बिगरी अकेली हौं ही,
 गोहन में छाँड़ो मोसें भौंहनि उमेठौ जनि ॥
 कुलटा कलंकिनी हौं, कायर कुमति कूर,
 काहू के न काम की, निकास याते ऐंठौ जनि ।
 'देव' तहाँ वैठियन जहाँ बुद्धि बाढ़े, हौं तौ,
 बैठी हौं विकल, कोई मोहि मिलि बैठौ जनि ॥

इसी भाव पर भारतेन्दु बाबू ने एक छन्द लिखा है—

हाँ कुलटा ओ कलंकिनी हों, अब तो हम छाड़ि दियो कुल गैलो ।
आँधी रहौ अपने घर में, तुम ना बर्हा आय करेजनि छैलो ॥
लागि न जाय कलंक तुम्हें, चुप बैठी रहो सँग लागी न टोलो ।
बाबरी जो पै भई सजनी, तो चलौ हम नाँ जनि आय कै बोलो ॥

हमारे विचार से दोनों ही छन्द बड़े उत्कृष्ट हैं । इन दोनों के भाव में उल्लेखनीय अन्तर नहीं है । वर्णन दोनों का सुन्दर है ।

१६—चिर-प्रवास के अनन्तर प्रियतम परदेश में आया ।
विरह-विधुरा वनिता को मानो पुनर्जीवन प्राप्त हुआ । उसके
हृदय का आनन्द या तो भुक्तभोगी समस्त मकता है या देव
मरीखे मार्मिक कवि । उसके आगमन से पहले ही से कुछ
ऐसे शुभ-सूचक सगुन हो रहे थे जिनसे उसे अनुमान हो गया
था कि प्रियतम अवश्य आते होंगे । वन, इसी अनुमान के
आधार पर बह अपने नये वस्त्र पहनने लगी । इसी भाव की
कविवर बिहारीलालजी ने बड़ी उमरगा से पंक्ति लिखी है ।
देगिरः—

गुगमैनी दग ही फाग, उर उल्लास नु हुन ।

धिन ही विय आगमन निर, पनटन नग मयन ॥

अब इसी भाव पर देवजी का छन्द देगिरः—

घाई नोहि-नोहि में क्वार्ह दिव-नयन ओ,

सुनि कोहि-नोहि रम नानिनि भगनि है ।

२१—सन्देश-काव्य विप्रलम्भ-शृङ्गार का एक अंगीभूत विषय है। इसी आधार पर मेघ, पवन इत्यादि कई प्रकार के दूत-काव्यों की रचना हो चुकी है। जिन लोगों ने काव्य का अनुशीलन किया है उनसे गोपिका और उद्धव के संवाद वाला प्रसंग छिपा नहीं है। इस विषय पर कविवर सूरदास ने बहुत कुछ लिखा है। और ऐसा सुन्दर लिखा है कि प्रकारान्तर से उस पर अधिक लिखने का क्षेत्र ही नहीं रह गया है। परन्तु इसके होते हुए भी प्रतिभासम्पन्न कवि सब कुछ लिख सकता है। कविवर नन्ददासजी जब अपना 'भँवरगीत' लिखने बैठे तो उन्होंने यह बात भली भाँति सिद्ध कर दी कि इस पर अभी और कुछ लिखा जा सकता है। कदाचित् इसी प्रेरणा के अनुसार कविवर देवजी ने निम्नलिखित छन्द निर्माण किया है—

जोगहि सिखैहैं ऊधो जो गहि कै हाथ हम,
 सो न मन हाथ, ब्रजनाथ साथ ह्वै चुकी।
 दव पंचसायक नचाय खेलि पंचन मैं,
 पंचहू करनि पंचामृत सो अचै चुकी॥
 कुलबधू है के हाय कुलटा कहाई अरु,
 गोकुल मैं कुल मैं कलंक सिर लै चुकी।
 चित होत हित न हमारे नित और सो तो,
 वाही चितचोरहि चितौत चित दै चुकी॥

इसी विषय पर कविवर रत्नाकरजी का निम्नलिखित छन्द देखिए—

नेम धन संजम के पीजरे परे का जय,
 लाज कुलहानि प्रतिबंधहि निवारि चुकी ।
 कौन गुन गौरव को लंगर लगाये जय,
 सुधि बुधिहू को भार देक करि टारि चुकी ॥
 जोग 'रतनाकर' में खान चूँटि घूँटि दौन,
 ऊपौ हम सुपौ यह पानक पिचारि चुकी ।
 मुक्ति मुक्ता को मोल माल ही कहा है जय,
 मोहन लला पै मन मानिक ही चारि चुकी ॥

दोनों ही एवमुन्दर हैं। यदि देव ने अपने चरित्र में यमकालद्वार का आश्रय लिया है तो रत्नाकरजी ने स्पर्श था।

२२—आजकल विद्वान का युग है। जो बात मक की कनौटी पर नहीं कसी जा सकती उनका कोई मूल्य नहीं है। ऐसी बात की मर्यादा पर अतिरिक्त प्रथमा अर्थात् विद्वान व्यक्ति भले ही विद्वान पर ले, परन्तु आधुनिक विज्ञान-शीर्षक नामधेय से इसे मानने के लिए तैयार हो नहीं। ये लोग इसे सत्य का समर्थन यह देते हैं। सुभाषचारी जन्मा सत्य का समर्थन को भले ही जनादर की सत्य से देते, परन्तु हमारे विद्वान हमारे समर्थन में जयता गौरव समर्थन है। रीतिरिवाजों ने इसे नियन्त्रिता का मान दे दिया है। यह नियन्त्रिता आज हमारे ही होती है।

(१) नमोपि निदम्यनीद-अर्थात् वरुण के सत्य होने पर भी हमारा सत्य अविनाशिक है।

(२) असतोपि निबन्धनीय—अर्थात् पदार्थ तो असत्य है पर उसका वर्णन किया गया है।

(३) नियमेन निबन्धनीय—अर्थात् जिस पदार्थ का प्राचीन काल में जैसा वर्णन हुआ है वैसा ही वर्णन करना।

(४) विकल्पेन निबन्धनीय—अर्थात् जिसका वर्णन दो प्रकार से किया जाय।

कविवर राजशेखर ने अपनी 'काव्यमीमांसा' में इसपर बहुत कुछ लिखा है। पाठकों के विनोदार्थ हम असतोपि निबन्धनीय पर एक छन्द उद्धृत करते हैं। इसे साधारण लोग भले ही ऊटपटाँग समझें; परन्तु काव्य के विद्यार्थियों को तो इसे साहित्यिक स्वयंसिद्धि (Axiom) ही मानना चाहिए। यदि वे इसी पर शास्त्रार्थ खड़ा कर देंगे तो समझ लीजिए इनके साहित्य-अध्ययन की इतिश्री यहीं हो गई। रेखागणित के अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी को पहले ही यह मान लेना चाहिए कि रेखा में लम्बाई मात्र होती है, चौड़ाई होती ही नहीं, यद्यपि व्यावहारिक जगत् में ऐसी रेखा बन ही नहीं सकती। यह गणितशास्त्रियों की मस्तिष्क-शक्ति की प्रसूति है। वह निबन्धना इस प्रकार है—

गिर महँ जहँ तहँ सरल अल्प जल महँ मराल गन ।

सुर सुरसरि महँ, वारि गजादिक अम्बुज सरितन ॥

तम मूँठी महँ गहव अँधेरहि सूचीभेदन ।

कीर्ति पुण्य शुभ्रत्व अकोरति अध अति करिपन ॥

कद्वि कृष्णता रचना निमि प्रताप मई मुकवि जन ।

क्रोध राग को रचना पान चकोरी शशि किरन ॥

तरुण नारि मद युक्त कुलिका करत वकुल पर ।

पुष्पिन से तरु हात तथा पद के अघात पर ॥

फूलत पुत्र अशोक बिना अग्नहू गामान्तर ।

सकल जलहि शैवाल चंद्रिका शुक्ल पक्ष भर ॥

चन्द्र किरण भरि अंजुलिहि भरत कदन युध जन गागर ।

निशा वियोगी चक्र कहे 'भानु' मुकवि कहे जुग गागर ।

(श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु')

इसका समर्थन राजशेखर जी ने इस प्रकार किया है ।

पादादतः प्रमदया विकनल्पशोकः

शोकं जहानि घण्टां मुग्धगीधुनिष्ठः

आलिंगितः कुरध्वः कुरने विमानं

आलोकितमिदं तत्त्वलियो विभाति ।

प्रसंग पाकर कवियर देवजी ने इसी माममी का पैना सुन्दर उपयोग किया है । जब ये शीघ्र अर्थात् वा वृद्धादरन् विचार करने लगे थे तब उन्होंने इसी माममी से पैना सुन्दर व्यवहार किया जो मार्कटिक दृष्टि से परमोत्तम है—

आये हैं भागिन भेटि तुमै लागि, फूल भरे अकुल पदारी ।

केसरि जानि तुमै तु मुदागिन आनय है तुम मी तुम दई ॥

गोनी मनाथ हो नाथ मया करि मो दिन को इदनी तो रजारी ।

होय मनोह तुमी तुम ली, पदलपन को लख मन्जन नई ॥

२३—रीतिकारों ने विप्रलम्भ शृङ्गार के पाँच भेद बताये हैं ।
(१) अभिलाषहेतुक, (२) ईर्ष्याहेतुक, (३) विरहहेतुक, (४)
प्रवास-हेतुक और (५) शापहेतुक ।

इसमें अभिलाषहेतुक विषय का वर्णन करते हुए देवजी ने
निम्नलिखित छन्द कहा है । यह गुण-श्रवण तथा चित्त-स्वप्न
एवं प्रत्यक्ष दर्शन का एकत्रित उदाहरण है । यहाँ नायक के
गुण-श्रवणादि से अनुरक्ता नायिका का पूर्वानुराग वर्णित है ।

देखिए:—

प्रेम कहा तिनसों पहिले हरि, कानन आनि समीप किये तै ।
चित्र चरित्र न मित्र भये, सपनेहु में मोहि मिलाय लिये तै ॥
'देवजी' दूर ते' दौरि दुराय कै, प्रेम सिखाय दिखाय दिये तै ।
वारिज से' विकसे मुख वै, निकसे इत ह्वै निकसे न हिये तै ॥

चित्र-दर्शन पर महाकवि कालिदास का इसी प्रकार का एक
परमोत्कृष्ट छन्द है—

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्
आत्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
अस्मै स्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ॥

—मेघदूत

गेरू सो प्यारी को चित्र बनाय, सिला पै जवै निरखों धरि ध्यान में ।
चाके दुआँ पद-पंकज पै, परि कै जवै मेटनि चाहों गुमान में ॥

चैरी विधाता हमारो हहा, मिलियो नहिं चाहन ऐसी दशान में ।
आनि धिरै घने बारि के बुंद, सरोवरु सो दुनिया अग्नियान में ॥

—हरिनाथ

इसी प्रकार स्वप्न-दर्शन का विषय है । देवजी ने इन पर एक बड़ा ही मार्मिक छन्द कहा है । इस छन्द की भाव-सामग्री विहारी के निम्नलिखित दोहे से संकलित की गई है, यद्यपि उनका विषय एक नहीं है । यह दोहा इस प्रकार है—

यों दलिमलिअनि निर्दयी, दुई कुमुम ने गान ।
कर धरि देखो धरधरा, अजहुँ न दिय को जान ॥

देवजी का छन्द इस प्रकार है—

भाव के अंक में मोइ निमकुतैं, पंकज मी अग्नियानि लुराकुती ।
र्यों नपनं में मिली अपनं, पिय प्रेम पगी लखिहूँ की लखलकी ॥
ठाढ़े ही ठाढ़े गहो भुज गाढ़े, मो पाढ़ी यभूँ के टिये में नयानरी ।
'देव' जगी रतिपाँ हूँ गई, न गिया के गई ललिया की भकावरी ॥

इसी को काव्य-सौशान कहते हैं । देवजी ने अपने स्वप्न-दर्शन में बिना मौन्दर्य उपमिषन कर दिया है । स्वप्न-दर्शन पर अन्य कवियों ने भी बड़े बड़े सुन्दर छन्द कहे हैं । परन्तु देवजी का यह छन्द अपने हीन का निशाना ही है ।

२५—भुवुती की-उपना बाम-कनान मे ली मोलकर हो गई है । संरुत बहियों ने इन पर गूढ़ लिखा है ।

उद्धूय बाहुयुगमायतगात्रयाष्टिः

प्रातः कुरंगनयनी विजहाति जृम्भाम् ।

मन्यामहे स्मररणात् पुरतो निवृत्तं

कामो धनुः कुटिलतारहितं करोति ।

और भी—

मथ्येवमस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ

वृत्तं रहःप्रणयमप्रतिपाद्यमाने ।

भेदाद्भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताद्याः

भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य ।

—कालिदास

देवजी ने धनुष को तुला बनाया है और नेत्रों को पलड़ा । उसमें कन्दर्प-जौहरी द्वारा वाल्यकाल और तरुणकालरूपी जवाहिरों को तौलाया है । नई सूझ है । हमारे विचार से ऐसा रूपक अन्यत्र मिलना कठिन है ।

भारी भर्यो विवि भौहन रूप, सुडोर दुहूँ लचि छोरनि डोलै ।
नीके चुनी को लिलार मैं टीको, सुटेकि खिलार खरे गुन सोलै ॥
वालपनो तरुनापनो लाल को, 'देव' वरावरी के बल बोलै ।
दोऊ जवाहिर जौहरी मैंन, सुनैन पलानि तुला धरि तोलै ॥

यही देव की मौलिकता है । प्राचीन परिपाटी पर पदार्पण करके आपने नये ढङ्ग पर लिखा है, और खूब लिखा है । उसी भाव पर एक अज्ञात कवि ने निम्नांकि तछन्द निर्माण किया है—

जाहरी मैन का नीका तुला, जुग नैन पला जहँ लाग्यो विराल है ।
 है रतिनाथक कौ धनु कैयों, बलावत सायक जागों कराल है ॥
 भौहँ लग्ये प्रिय भावती की, उपजे हिय गाहि नये एक ग्याल है ।
 ढाल पै सांगी धरी है किर्या यह ज्ञान पै कैयों चढ़ी करबाल है ॥

इस छन्द के रचयिता महोदय ने मन्देहालद्वार का आशय लेकर कई कई विचार बाँधे, परन्तु उनमें वह कामलता नहीं आई जो देव के छन्द में है । चातुर्वर्ग में अनुकरण अनुकरण ही है । वह मौलिकता के सामने कभी नहीं टहर सकता । इसी को भावसंसार कहते हैं । अनुकरणकर्ता महोदय देवजी की छान्द भी नहीं छू सकते हैं ।

२५—संदिता नायिका के निम्नलिखित वर्णन में भी देवजी ने विशेष चमत्कार दिखाया है, यद्यपि इसकी नादित्य-नाममाँ पिदारी के दोहे में ली गई मालूम होती है । दोहा इस प्रकार है—

घाल कहा लाली भई, लोयनि कोयनि नाई ।

माल तिहारे लगन की, पही लगनि में लई ॥

यह संदिता खीन उनके नापराध नायक का संवाद है । नायक ने पूछा कि हे प्रिये, आज तुम्हारे नेत्रों में चरमिलता क्यों है । संदिता ने जवाब दिया कि कुछ नहीं, आपसे नेत्रों को लाया इनमें पड़ी है । देना मन्दमन्द है । देना नर्मित पड़पाद है । देवजी का छन्द इसी भाव से मिलान-मुलाना है ।

(८८)

‘कवि देव’ घटा उनई जु नई, बनभूमि भई दल टूकनि सों ।
रंगराती हरी हहराती लता, भुकि जाती समीर की भूकनि सों ॥

(५)

ठाढ़ी चितौत चकोर भयो, अनतै न इतै तू कहूँ चित दीजतु ।
सामुहैं नंदकिसोर सखी, कवि को मुसक्यानि सुधारस भीजतु ॥
भाग ते आइ उअौ ‘कवि देव’, सु देख भट्ट भरि लोचन लीजतु ।
तेरे री चंदमुखी मुख-चन्द पै, पूरन चन्द निछावरि कीजतु ॥

(६)

आई ही गाइ दुहाइवे कों, सु चुखाइ चली न बछान को घेरति ।
नैकु डराय नहीं कव की, वह साइ रिसाइ अटा चढ़ि टेरति ॥
यों ‘कवि देव’ बड़े खन की, बड़रे दग बीच बड़े दग फेरति ।
हौं मुख हेरति ही कव की, जब की यह मोहन को मुख हेरति ॥

(७)

कूल चली जल केलि के, कामिनि, भावते के सँग भाति भली सी ।
भीजे दुकूल में देह लसै, ‘कवि देव’ जू चम्पक चारु दली सी ॥
चारि के बूँद चुवैं चिलकैं, अलकैं छवि की छलकैं उछली सी ।
अञ्जल भीन भकैं भलकैं, पुलकैं कुच कन्द कदम्ब कली सी ॥

(८)

सुन्दरि सोवति मन्दिर में, कहूँ सापने में निरख्यौ नँदु-नंद सौ ।
त्याँ पुलक्यौ जल सों भलक्यौ उर, औचक ही उचकौ कुचकंद सौ ॥
तौ लगि चाँक परी कहि ‘देव’, सु जान परौ अभिलाप अमन्द सौ ।
आलिनि को मुख देखत ही, मुख भावती को भयो भोर कौ चन्द सौ ॥

(८९)

(९)

देव मुरानुर मिद्ध धधून को, एतौ न गर्व जितौ इह ती को ।
आपने जोधन के गुन के, अभिमान सदै जग जानन कीको ॥
काम की ओर सवेरति नाक, न लागत नाक देा नायक नीरे ।
गोरी गुमानित ग्वारि गमारि, गिने नहिं, रूप रती के रतीरे ॥

(९०)

नोयत ते' मयी जान्यो नही, यह सोचत ते' घर आयी हमारे ।
पीत पटी फटि मेा लपिटी, अरु नाथरे सुंदर रूप संधारे ॥
देव अथै लागि आग्निन ते', यह धाकी चितौनि दरे नहि टारे ।
सापने में पित चोरि लियो, यह नोखरी मार-भर-वदनधारे ॥

(९१)

नापने में गर्व देगन हीं लुनि, नाचन नन्द यमोननि ही नट ।
चा सुनपयाइ के भाव पताइ के, भरोइ नहिं गरी पयो पट ॥
सौ लगि गाय रम्हाइ उठी, 'कवि देव', धधुनि मय्यो इधि को पट ।
चाकि परी नव फाट को न, कटनवन कुंवन फालिही ही नट ॥

(९२)

देव मनायत मोहन लू, यथ के मनुहारि दरे ललचौनि ।
यामे दनाय सुनारि मरी, सध गारे की सोगे मरी निनौनि ।
नाह सो नै मज मरनी, यजि गति चितौनि चितौनि न मोनि ।
मानन नाहि मिरिहति जाननि, दान सो आने दमान सो भीनि ।

(९०)

(१३)

ता दिन ते' अति व्याकुल है तिय, जा दिन ते' पिय पन्थ सिधारे ।
भूख न प्यास बिना ब्रजभूषन; भामिनि भूषन भेष बिसारे ॥
पावत पीर नहीं 'कवि देव', करोरिक मूरि सबै करि हारे ।
नारि निहारि निहारि चले, तजि वैद बिचारि बिचारि बिचारे ॥

(१४)

अरि कै वह आज अकेली गई, खरिके हरि के गुन रूप लुही ।
उनहू अपनों पहिराय हरा, मुसकाइ के गाइ के गाय दुही ॥
'कवि देव' कह्यौ किनि काऊ कछू, तब ते' उनके अनुराग छुही ।
सबही सों यही कहै वाल-बधू, यह देखौ री माल गुपाल गुही ॥

(१५)

श्री वृषभानलली मिलि कै, जमुनाजल केलि कों हेलिनु आनी ।
रोमवली नवली कहि 'देव', सु सोने से गात अन्हाव सुहानी ॥
कान्ह अचानक वोलि उठे, उर वाल के व्याल बधू लपटानी ।
धाइ को धाइ गही ससवाई, दुहूँ कर भारत अंग अमानी ॥

(१६)

यह तो कछु भामिनी कोसौ लसै, मुख देखत ही दुख जात है है ।
सफरी मद मोचन लोचन ये, परिहैं कहूँ मानों चितौति ही चवै ॥
कवि 'देव' कहै कहिए जुग जो, जल जात रहे जलजात में धवै ।
न सुने नवौ काहू कहूँ कवहूँ, कि मयंक के अंक में पंकज द्वै ॥

(९१)

(९७)

यह कैधों कलाधर ही थी कला, अथवा फिर्ही थी कैधों मन्दी ।
फिर्ही कौन के भौन थी दीप-मिख, मन्दी कौन के भाग है भाल मन्दी ॥
तिहें लोक थी सुन्दरताई की एक, अनूपम रूप थी रानि मन्दी ।
नर, किन्नर, सिद्ध, सुरासुराइन थी, यन्त्रि वधूनि विरन्त्रि रन्दी ॥

(९८)

फह कौन थी सम्पद घान लता, यह देगि मधै जन भूलि गई ।
'कवि देव' ये ती मैं फहा बिलम, विचखी फल मे भरि भूलि गई ॥
तिहि ऊपर को यह सोम नवोत्तम, तौम चाँ दिमि भूलि गई ।
चित में चिनु पोरत कोए तहाँ, नयनील नरोज मे फूलि गई ॥

(९९)

स्याम नवाने पदावत हैं कौन, आनु को फाहि मवानु हैं शीनो ।
'देव' गई हरि देर हठीर मैं आपनो धर यधु उहि शीनो ॥
चूनि गई मुँह औचक ही, पदु लै गई पै इन बाहि न चीन्तो ।
दिल भले दिनही मैं लले, दिन ही मैं दूखीली भनो दल चीन्तो ॥

(१००)

वाल लवान में वाल थी घोल, नयनों पर नय मन्दीन दे देग ।
फह वही हनि गथा यही, हरि 'देव' ली देगी ही सुन केग ॥
हैं तब लें पल एक ली बल, सायनि ली अनिलाननि देग ।
याही निरुलहि नगरुमार, परीह मैं पार हलारह देग ॥

(९२)

(२१)

पहिले सतराइ रिसाइ सखी, यदुराइ पै पाइ गहाइए तौ ।
फिरि भेंटि भट्ट भरि अंक निसङ्क, बड़े खन लौं उर लाइए तौ ॥
अपनो दुख औरनि कौ उपहासु, सबै 'कवि देव' बताइए तौ ।
वनस्यामहि नैं कहू एक घरी कौ, इहाँ लगि जो करि पाइए तौ ॥

(२२)

आसव सेइ सिखाये सखीन के, सुन्दरि मन्दिर में सुख सोवै ।
सापने में विछुरे हरि हेरि, हरैइ हरै हरनी दग रोवै ॥
'देव' कहै उठि के विरहानल, आनँद के आँसुवान समोवै ।
आजु ही भाजि गई सब लाज, हँसै अरु मोहन को मुख जोवै ॥

(२३)

या डर हौं घर ही में रहौं, 'कवि देव' दुरो नहि दूतनि को दुख ।
काहू की बात कही न सुनी मन, माहि विसारि दियो सिगरो सुख ॥
भीर मैं भूले भये सखि मैं, जब ते जदुराई की ओर कियो रुख ।
मोहि भट्ट तब ते निस द्यौस, चितौत ही जात चवाइन कौ मुख ॥

(२४)

पुकारि कही मैं दही कोइ लेउ, यही सुनि आइ गयो उत धाई ।
चितै 'कवि देव' चलेई चले, मन मोहनी मोहनी तान सी गाई ॥
न जानति और कछू तब तें, मन माहि वही पै रही छधि छाई ।
गई तौ हती दधि वेचन वीर, गयो हियरा हरि हाथ बिकाई ॥

(९३)

(२५)

मेरेऊ अंक जो आर्य निरुक्त ती, हैं उनके परजहृदि जैहैं ।
पान खवाइ उन्हें पहिलैं तब, नाथ के हाथ के पाननि गैहैं ॥
ऐसी न होइ जू देह की दीपति, देव को दीप समीप देहैं ॥
मोहन को मुग्ध चूमि भट्ट तब, हैं अपनेो मुग्ध चूमन देहैं ॥

(२६)

हार बिहार में छुटि परै अरु, भूपन छुटि परै हैं सगुलनि ।
जोरि सधै पहिरायौ समहारि कै, अरु समहारि सुधारि दुगुलनि ॥
सीतल मेज दिखाइ के घालन, घाल गुनालनि के दल गुलनि ।
वैमिय घेनी घनाइ लला, गहि गूँधी गुपाल गुलाव के फूलनि ॥

(२७)

भारे हैं भूरि भराई भरे अरु, भाँति सभाँतिसु रे मन भाये ।
भाग पड़े यही भागती के जिति, भागने लै समभाँत दगाये ॥
भेगु भलोई भली विधि सों पारि, भुनि परे पियाँ पाइ भुलाये ।
लाल भले ही भले सुख दीनों, भली भई जाइ भले पनि जाये ।

(२८)

भार ही भाँत में भागनेो जायन, प्यारी पियै के हँस हन केने ।
पाल पिलोकि के लाल पतों पल्ल, पारि ले सखि पियोजन मेने ॥
कोजि नही सुनि के लिय सोन, 'सुदेव' पदैं पारि सोन केने ।
शब्द के रंग रंगे हन राखरे, सखरे रन मेने हन मेने ॥

(९४)

(२९)

व्याह की वीधि बुलाये गये सब, लोगनु लागि गये दिन दूने ।
 'देव' तुम्हारी सौ बैठी अकेलियै, हैं अपने उर आनति ऊने ।
 क्यों तिन्हें वासर वीतत वीर, बनाये हैं जे विधि बन्धु बिहूने ॥
 कौन घरी घर के घर आवे, लगैं घर घोर घरीक के सूने ॥

(३०)

सालिनि है हरि माल गुहैं, चितवै मुख चेरी भये चित चाइनि ।
 पान खवाचै खवासिन है कै, सवासिन है सिखवैं सब भाइनि ॥
 वेंदी है 'देव' दिखाइ के दर्पन, जावक देत भये अब नाइनि ।
 प्रेम पगे पिय पीत पटी पर, प्यारी के पोंछिय मारी से पाइनि ॥

(३१)

होरी हरें हरें आइ गई, हरि आये न हेरि हिये हहरैगी ।
 वानि वनी वन वागनि की, 'कविदेव' विलोकि बियोग बरैगी ॥
 नाउँ न लेऊ वसन्त कौ री, सुनि हाय कहूँ पछिताय सरैगी ।
 कैसे कि जीहै किसोरी जो केसरि, नीर सों वीर अवीर भरैगी ॥

(३२)

नेह सों नीचे निहारि निहोरत, नाहीं कै नाह को ओर चितैवो ।
 पीठि है पीठि मरोरि कैं डीठि, सकेरि कैं सौंह सौं भाँह चढ़ैवो ॥
 प्रीतम सों 'कवि देव' रिसाइ के, पाइ लगाइ हिये सों लगैवो ।
 तैरौ री मोहि महामुख देत, मुघा रसहूँ तैं रसीलौ रिसैवो ॥

(१५)

(३३)

मालती ने मलिन निख गोमट्ट, या सुन्दरानि हैं ज्यों समुद्रजै ।
प्रीति पुरानी पुरैनि के रैन, रहै निखरे न विपति बहै ।
ऊपर ही गुन रूप अनूप, निरन्तर अन्तर में पतिवै ॥
ये अलि दूलह भूलेह देव जू, चम्पक फूल के मूल न जैवै ॥

(३४)

प्यारी के प्रात समेत पियो, परदेस पदान की दात बलावै ।
'देव जू' द्योभ समेत दपा, छतिया में दपाकर की दधि दायै ॥
घोलि अली वन घोष दमन्त कौ, नीचु समेत नगीच दायै ।
काम के तीर समेत समीर, मरीर में लागत पीर दायै ॥

(३५)

कौन के छोड़ नहीं में छलास, सुजात नई दुख देखत ही दायै ।
जाहि लखै मिलै यहि भाँति, परै ननु नौति मरोजन पै दायै ।
गारी ने प्यारी तिहारी सुन्दर-सुनि, चन्द-ममान दमानन में दायै ॥
पानन-शोष मलीन न होति, पै हीन के जानि दपाकर की दायै ॥

(३६)

गिरी हैं खौर कि ये नय खौर कि, दोनन खानु ही खौर मलीन ।
खाले हने नन ताप निरासु पै, मेरे हिये न विगत ही भोगी ॥
ये जहँ कोटिल पूर मनी, मुहि कान सुने उन कानन मनी ।
लोग मनी को मराहत री नद, मोरी मनी मनी मरीर मनी ॥

(९६)

(३७)

डोलति हैं यह कामलतासु, लचीं कुच गुच्छ दुरूह उधा की ।
 कौल सनाल कि वाल के हाथ, छिपी कटि कान्ति की भाँति सुधा की ॥
 देव यही मन आवती है, सविलास वधू विधि हैं बहुधा की ।
 भाल गुही मुक्तालर भाल, सुधाधर मैं मनौ धार सुधा की ॥

(३८)

वेली नवेली लतानि सों केली के, प्रात अन्हार सरोवर पावन ।
 पिंजर मंजर का छहराइ, रजकृति छाइ छपाइ छपावन ॥
 सीतल मन्द सुगन्ध महा, वपुरे विरही वपुरी नित पावन ।
 आजु को आयो समीर सखी री, सरोज कँपाइ करेजो कँपावन ॥

(३९)

एक तुहीं वृषभानुसुता अरु, तीनि हैं वे जु समेत सची हैं ।
 औरन केतिक राजन के, कविराजन की रसनायै वची हैं ॥
 देवी रमा कवि देव उमा ये, त्रिलोक में रूप की रासि मची हैं ।
 पै वर नारि महा सुकुमारि, ये चारि विराञ्च विचारि रची हैं ॥

(४०)

वाल त्रिलोकत हीं भलकी सी, गुपाल गरै जलविन्द की मालै ।
 आपुस में मुसक्यानी सखी, हरि देव जू बातै वनाइ त्रिसालै ॥
 माँप ज्यों पौन गिलै उगिलै, विष यों रवि ऊपम आनि उगालै ।
 जात दुख्यो वर ही म वने, तपधीन भयो तनुधाम के वालै ॥

अष्ट जाम

(१)

मराहें सुरासुर सिद्ध समाज. जिन्हें लयि लाजत हैं रति नार ॥
महा मुद मंगल संग लसै, विलसै भयभार निवार निवार ॥
विराजै त्रिलोक निकाई श्री ओष. सुनीम मनाहर रूप अपार ॥
मदा दुलही घृषभानुनुता, दिन दूलह भी मृजराजकुमार ॥

(२)

पगी पिय प्रेम जगी पाहें जान. रंगी रति रंग भयो परमान ॥
कियो न बियोन लियो भरि भोग, पियो रम कोष हियो न अपमान ॥
गुलाब सै लै घटभानिनि मो, दिगई तनिर्या नन द्यौ न अपमान ॥
नसै रंग ना रंग देसदि ये, रंग धोवन मो रंग पावन जान ॥

(३)

लयि सासुरि दाम दूपाइ रई, ननदी लनि जौ डरजावनि भीतरि ॥
मौननि मो मनगनि निगौनि, जिठानिनि मो जिय डानव प्रीति ॥
दामिन हैं मो उदामिनि 'देय', पदावनि नेम मो प्रेम प्रतीति ॥
भाइ मो पृथनि पारि दिन की, मरीन मो मरीन ने लग की गीति ॥

(४)

मेरी मनोनी सहाय भगी, मरुमनि मरीनि मरुत मही मो ॥
'देय' लयि मये मोदन मे, सुरा मरु मरु मरुत दुलही मो ॥

(९८)

प्यारी की पीक कपोल में पी के, बिलोकि सखीनि हँसी उमड़ी सी ।
सोहन सैन न लोचन होत, सकोचन सुंदरि जाति गड़ी सो ॥

(५)

आइ हुती अन्हवावन नाइनि, सोंधी लिये कर सूधे सुभाइनि ।
कंचुकि छोरि उतैं उपटैवै को, ईगुर से अँग की सुखदाइनि ॥
'देव' सरूप की रासि निहारति, पाँय सों सीस लै सीस ते पाइनि ।
है रही ठौरहीं ठाढ़ी ठगो सी, हँसै कर ठोढ़ी दिये ठकुराइनि ॥

(६)

कुंजगली है अलो पठई वन, गूढ़ थली है लै आइ सो नाहैं ।
'देवजू' दोऊ मिले जवहीं, रस-मेह सनेह नदी अवगाहैं ॥
फूलन के गहने लै दुहून के, अन्तर में पहिरावन चाहैं ।
लालन कै गल मेलि सी राखति, वाल सो चंपकवेलि सी बाहैं ॥

(७)

आपुस में रस में रहसैं, विहँसैं वन राधिका कुंजविहारी ।
स्यामा सराहति स्याम की पागहि, स्याम सराहत स्यामा की सारी ॥
एक ही दर्पन देखि कहैं तिय, नीके लगौ पिय प्यौ कहैं प्यारी ।
'देव' सुवालम वाल के साथ, त्रिलोक मई बलि है बलिहारी ॥

(८)

प्यारे तिहारे के मोहिवे को, सच सौति सिंगार करैं बहुतेरो ।
.आपुनो सो प्रनु हारि करैं, मनुहारि निहारि सखी मन तेरो ॥
तेरे सोहाग के ऊपर चारिये, औरनि के रंग राग घनेरो ।
'देव' निसाकर जोति जगै न, जगै जुगुनून को पुंज छंजेरो ॥

(९)

आँखिनि में पुतरी हैं रहीं, हियरा में हरा हैं सदा नुग लट्टें ।
 अंगनि संग रहीं अंगराग हैं, जीव में जीवन-गुरि हैं जूटें ॥
 देव जू प्यारे के न्यारे नये, गुन मो मन मानिक ते नहि टूटें ।
 और लिया सो न तो बतिया, नहि मो दनिया ने दिनौ भरि कूटें ॥

(१०)

धैठी बभू गुर लोगनि में, पिय के बिछुरे दिन भौन न भावै ।
 पाइल्लो जाम गयो जुग मो, अब जामिनि क्योंकरि कामिनि पावै ॥
 चाँकि चितै करि ल्यो द्रवि 'देव', सुवाननही दवि सोस गमावै ।
 धाड़ मो पैन समीनि मो सैन, सुमैन के पैन मो नैन नपावै ॥

(११)

दासी सखी कमला भी लिये संग, आद गई अबला नुग माने ।
 ता रंग भौन मैं भावयो आयो, उतै उठ ही मो मरा दिन ठामे ॥
 नेकाई के दिछुरे जुग मे गये, सोपन दोऊ मरोप समाने ।
 नेज पै मोहैं जक मिलियै, केवळ मिलिये वे। महा अकुलाने ॥

(१२)

पान दियो हँमि आद सो प्यारी पट्ट, लखि ली हँमि भीठ मंगी ।
 पीठ गही नलपाद लला नुग, नारी बनी कमलाद मिल्यो ॥
 मरि न लाज जेठानी सखी, लन 'देव' रिटाई वर नहि मांगी ।
 लाल जिहँभितवै निव पै, दिय ल्यो ल्यो भिनीनि समीनि यो चोरी ।

(१००)

(१३)

चितौति वनै नहि रंग की रैनि, इतै त्यों चितौति सखीनि की न्याई ।
चुरैल है लागी अजौ लगि लाज, सु कौ लगि बांधे हिये महुँ जाई ॥
मनोज की ओज सहो न परै, कवि 'देव' रहो न परै सकुचाई ।
चली रस-वातैं भली यक वार, चली मुख भोरि सखी मुसुकाई ॥

(१४)

दीन्ही विदा मुसकाइ सखीनि को, कीन्ही कछू भृकुटी भरि भालहिं ।
चातुरता चित बाढ़ी किसोरी के, आतुरता लखि 'देव' गोपालहिं ॥
सोहैं चितै अरसोहैं तिया, तिरछोहैं हँसोहैं सँवारति मालहिं ।
पैनी चितौनि सों चूरि कै चित्त, सु दूरि भये ललचावति लालहिं ॥

(१५)

लीन्ह उसास मलीनि भई दुति, दीन्हीं फुँदी फफुँदी की छपाइ कै ।
लागी सुधारन आंगी बहू लखि, 'देव' गोपाल उठे अकुलाइ कै ॥
औचकि ही उचि ऐचि लई गहि, गोरे बहे करकोर उचाइ कै ।
चंपक माल सी माल भुजानि मैं, राखी भुजानि हिये लपटाइ कै ॥

(१६)

सँग सेवत हीं पिय के मुख सों, मुख सों नहि योग वियोग सहै ।
सपने महँ स्याम विदेस चले, सु कथा कवि 'देव' कहाँ लों कहै ॥
तिय रोइ मकी न सुनी ससकी, हँसि प्रीतम त्यों भरि अद्भुत गहै ।
बड़भागी लला उर लागी जऊ, तिय जागी तऊ हिलकी न रहै ॥

(१०१)

(१७)

कै घटिको गुरुगुरा बहु कूर कि, बाकी निचा कट्टे काट नृनी है ।
 पोलि लटे अधर अधरानक, सौनि के हन के गंत धनी है ॥
 चाकर चोर के पाटख ग्यान कै, नेही सिया कैयों केर कनी है ।
 मोइए श्रीमनश्याम परीक, न नैन उधारिण रैन धनी है ॥

(१८)

चा चकई को भयो चित पीतो, चितौति चट्टे दिनि पाय सों नाची ।
 हँ गई छीन कलाधर की लुधि, जागिनि जोंट मनो जन जाची ॥
 घोलत धैरी पिहगम 'द्व' सो, सौनिनि के घर संपति माची ।
 लोह पियो जों पियोगिनी को, आई नासुहें लाल पिमाधिनि प्राची ॥

(१९)

हौम गेवाइ, करी सुख-बेलि, निचा तपरी नय अंग सुधारै ।
 तानि लियो पट घूँपट में, मलकैं दग लाल भरे मरारै ॥
 'देव' जूँदसि लगे ललपान, लला के कपोल पोंप पुनारै ।
 नार मनौ मर नार के रोम कै, एक ही घाम हजारक मारै ॥

(२०)

सुख मंज के मंदिर ने सुरमंदिर, मूरति प्याइ गई सुधरी ।
 सुर लोगनि के पग लगनि प्यार सों, प्यारी बटु मरि मौन करी ॥
 कपि 'देव' समीपत ईम करो सुम, कोटि परीस सों सीम धरी ।
 पिय के हिय ने धरियो निग ही, परमाधिनि भाग मोहाग भरी ॥

भवानी-विलास

(१)

श्री विधि बानी जु वेद बखानी, पुराननि जो सिव संग भवानी ।
जो कमला कमलापति के सँग, 'देव' सचीस सची सुखदानी ।
दीपसिखा वृज मन्दिर सुन्दरि, जागति ज्योति चहूँ युग जानी ॥
सिद्धि की साधिका साधु समाधिका, सो वृजराज की राधिका रानी ॥

(२)

सुनि 'देव' अनूप कला वृजभूप की, रूपकला अकुलान लगी ।
पहिचानन प्रीति अचान लगी, लखिवे को कछु ललचान लगी ॥
भरि भाइक भौह कमान चढ़ाइ कै, तानन लोचन वान लगी ।
कहुँ कान्ह कहानी सी कान लगी, तब ते तन प्रान विकान लगी ॥

(३)

स्यामा की स्याम की नाम सखीनि, सुनायो सुनावत कीन्हों कछु उन ।
'देव' गोपाल गये गढ़ि ही में, ज्यों आँक कछु बिन जाने लिखै धुन ॥
खेल ते औरई खेल भयो, खिन एक न खेलत खेल सुन्यो मुन ।
काननि पैठि कै आँखनि हैं हरि, कै हिय बैठि रहे हरि के गुन ॥

(४)

नंदलला वृषभानलली भये, सामुहें 'देव' संयोग सुभै कै ।
लोयन लोइन लागे अनूप, दुहैं के दुहैं रस रूप लुभै कै ॥

(१०३)

मन्द हँसी अरविन्द ज्यों चिन्द, अँधे गये दीठि में दीठि चुभै कै ।
 रंज की मंजिम रंजन मानौ, उठै चुनि चंचुनि चंचु चुभै कै ॥

(५)

जय ते कुँवर बान्ह राधरी पलानिधान
 कान परी बानी चाके तुजम पहानी मी ।
 नय ही ते 'देव' देखी देवता मी हँसनि मी
 रीमति मी रीमति मी रीमति रिमानी मी ॥
 छोड़ी मी छोली मी छोनि लीनी मी छोवी मी छोनि
 जकी मी चकी मी लागी थकी पहरानी मी ।
 घोधी मी यधी मी बिष कूटी मी विमोहिन मी
 पैठी बाल पदति बिलोरन पिकानी मी ।

(६)

रीमि रीमि रहमि रहमि रीमि रीमि उठै
 मारि मरि मरि मरि मरि मरि मरि मरि ।
 रीमि रीमि रीमि रीमि रीमि रीमि रीमि रीमि
 रीमि रीमि रीमि रीमि रीमि रीमि रीमि रीमि ॥
 दुख के गुन रूप दोऊ दानन रिरे
 पतन गिरान नीति नेह की नद नद ।
 मोहि मोहि मोहि मोहि मोहि मोहि मोहि मोहि
 मोहि मोहि मोहि मोहि मोहि मोहि मोहि मोहि ॥

(१०४)

(७ :)

चैठी सीसमन्दिर में सुन्दरि सवार ही ते
मूँढ़ि कै केवार 'देव' छवि सो छकति है ।
पीत पट लकुट मुकुट वनमाल धरि
भेष कर पिय को प्रतिविम्बित में तकति है ॥
होति न निसंक उर अंक भरि भेंटिवे को
भुजनि पसारति समेटति जकति है ।
चौकति चकति उचकति चितवति चहूँ
भूम ललचाति मुख चूमि न सकति है ।

(८)

मौन गह्यौ कल कंठ कपोतनि, सारस हंस हरे चलि हेरेई ।
सारथ्यो सुवानि सुवानि परी, जो सुवानि सुनै नित साँझ सवेरेई ॥
चौकत से चकई चकवा कहि, 'देव' उदै मुख-चन्द उजेरेई ।
भारिघै भीर करे रहैं भौरनि, मोर चकोर रहैं घर घेरेई ॥

(९)

देखि न परति 'देव' देखि देखि परी चानि
देखि देखि दूनो दिख साध उपजति है ।
सरद उदित इन्दु चिन्दु सो लगत लखे
मुदित मुखारविन्द इन्दिरा लजति है ॥
अदभुत कल सी पियूष सी मधुर चानी
सुनि सुनि नवननि भूष सी भजति है ।

(१८५)

भार किया मन्त्री नुकुमार परतंत्री धैन,
बिना तार तंत्री जीभ जंत्री भी पजति है ।

(१०)

तैं रतै कमल कमलाकर कमलमुखी,
कृलनि में कृलि कै स्तरीयै स्तिलि जालि है ।
चित्रनि में चित्र तें विचित्र होति चित्रिनी,
अनूप चित्रनारी के नरूप द्रिलि जालि है ॥
दीपनि समीप दीपसिखा तैं न पैये 'द्वय',
चन्द्रमुखी चाँदनी महल मिलि जालि है ।
सौम हू न दोसै सोममन्दिर में सुन्दरि,
प्रकामि प्रनिदिग्यनि प्रभा में विलि जालि है ॥

(१०६)

(१२)

कामल बानि वड़ेन की कानि, हरे मुसकानि सनेह सनी की
सील सलोनि सचिन्त चितौनि, चितै ललचौनि सुभाइ बनी की ।
सेज पै सौति करेजिन साल, मनोज के ओज मजेज मनी की
'देवजू' आपन जोवन रूप, धरोहरि सी धन राखै धनी की ।

(१३)

पाइ धरै कर दावि हियो, उर देवर के पग नेवर दावै
देखि रहै ननदै मन दै, अरु सासुहि हेरि उसास न आवै ।
प्राण वसै प्रतिप्राण के प्राणनि, भूपन भोजन पान न भावै
देवजू दर्पन हैं चित निर्मल, प्रीतम को प्रतिबिम्ब दिखावै ।

(१४)

दौरी फिरै किरकी सी दुहूँ दिसि, 'देव' दुहूँ गुन बाँधि कै ऐंची
लोक की लोक इतै न लघौ, उत नेह नये वा खये गहि खेंची ।
लाज उयो वाज चिरी झपटी, कपटो कुल के उर अन्तर कैंची
या तन तेज न तेहो जुदो, पर रे मन तैं अनतैं कहूँ बैंची ।

(१५)

आजु मिले बढ़तैं दिन भावते, भेटन भेट कछू मुख भाव्यो
ये भुज भूपन मो भुज बाँधि, भुजा भरि कै अवरारस चाव्यो ।
दोजिये मोहि ओढ़ाइ जरी पर, कीजिये जू जिय जो अभिलाव्यो
'देव' हमैं तुम्हैं अन्तर पारन, द्वार उतारि इतै घरि राव्यो ।

(१०७)

(१६)

चम्पक-पात में गात भरोरि, करोरिक भाइ सुभाइ नैचैयन ।
मेा मिसि भेटि भट्ट भरि अंक, मयंक में आनन ओठ ओचैयन ॥
'देव' कहै चिन घात चले, नयनोल भरोज में नैन नचैयन ।
जानति है भुज मूल उचाइ, टुकून लचाइ ललै ललचैयन ॥

(१७)

फाम की कुमारी भी परन नृकुमारी याद,
जाकी है कुमारी महाभाग वा जनक के ।
मलज सुमील मीलतारि की मलाका मेल-
सुताते मलोनी धैन धोना के मनक के ॥
एधी अवाही ते' धनदेधी ऐसी देधी 'देव',
देधी ने' लगन गुन गर्नै' मनक के ॥
धनक धनक मन मनक मनक मन,
मनक मनक पर फंदन धनक के ।

(११०)

(२५)

न्योते गई घृपभानु-सुता, ललिता के जहाँ पति प्रीति पढ़ी है ।
भीति में प्रीति में देखि लिखे, नवला के हिये नवलाज बढ़ी है ॥
आँखिनि भीजी सी अंग पसीजी सी, छोभनि छीजी सी भौंह मढ़ी है ।
चाँकी चकी ससकी नसकी, चितै मित्त की मूरति चित्त चढ़ी है ॥

(२६)

हाँ सपने गई देखन को, कहूँ नाचत नन्द जसोमति को नट ।
वा मुसकाइ कै भाव बताइ कै, मेरोई खैंचि खरो पकरो पट ॥
तौ लगि गाइ बगाइ उठी, कहि 'देव' बधूनि मध्यौ दधि को मट ।
जागि परी तौ न कान्ह कहूँ, न कदंव न कुंज न कालिंदि को तट ॥

(२७)

धाइ कै अंक में मोई निसंक है, पंकज सी आँखियाँ निकासकी ।
त्यों नपने में मिले अपने पिय, प्रेमपने छवि ही की छकाछकी ॥
ठाढ़े ही ठाढ़े भरी भुज गाढ़े, मुबाढ़ी दुहूँ के हिये में सकासकी ।
'देव' जगी रतियाऊ गई, न तिया के गई छतिया की धकाधकी ॥

(२८)

न्यासि में खेलन आवनीयै, न तौ आँखिनि के मत में परती क्यौ ।
'देव' गोपालहि देखनीयै, न नौ या चिरहानल में जरनी क्यौ ॥
बापुगी मंजु रसान की बालि, मुभालि गी हौं घर में आरती क्यौ ।
रामल चूकि कै कर्बलिया कूर, करेजनि की किरचें करनी क्यौ ॥

(६११)

(२९)

राधिका कान्हू के ध्यान धरै, तब कान्हू हैं राधिका के गुन गावै ।
ल्यौ अँगुठा घरसँ घरसाने को, पानी लिखै लिखि राधिके ध्यावै ॥
राधे हैं जारत ही दिन मैं गढ़, प्रेम की पानी लै दानी लगावै ।
आपु मैं अपुनही उरकै, नुरकै पिरकै मरुनकै मरुनगवै ॥

(३०)

ना स्निह दूरत टारे आसि न लगत पल,
आसिनि लगै री म्यान सुन्दर सखीन मे ।
देखि देखि गातन अघात न अनुष रम,
भारि भारि रूप लैत लोचन अघात मे ॥
ए री कान्हू को हँ हँ कहा ही कहा कहति ही,
कैसे पन कैंज 'देव' देखितन भोज मे ।
गावै री मदन पैटो कहनी ही कान्हू कान्हू,
हा हा पति कान्हू से कहा हँ कौन मे ॥

(३१)

जो दिन देखे मये दिन री, निनको पतिनाथ जरौ दिव है मे ।
'देव' जू देखि निहँ ही दुखी भई, या दिव पौ दूर बाति लगे मे ।
देखत देखत देखत ही रही, साधनी देह न देखत देखे ।
देखे दिना दिवनाथ नही, नही देखे देखत हँ न जावे मे ॥

(३२)

जसविनि में सुखी हँ रनै, निजरा मे हन हँ मदी मरु मदी ।
जसविनि संग रहै जोगराज हँ, दीप मे दीपनदी न दूरी मे ॥

(११२)

'देव' जू प्यारे के न्यारे न री गुन मो मन मानिक ते नहिं दूटै ।
और तिया सुतौ तौ बतिया करै मो छतिया ते छनौ जब छूटै ॥

(३३)

रूप के मन्दिर साँवरो सुन्दर चाल चलै गुन गर्व गहीली ।
जोवन के वनमाली हँसै अलसानी हँसै अँखिया उनमीली ॥
'देव' सुने छवि सोम धुनै अवलाजन जे अव लाज लजीली ।
रहै क्यों ऊजरी गोकुल में ब्रजगूजरी गोकुल की गरबीली ॥

(३४)

ताप चढ़ै ज्यों चढ़ावत चन्द न राखति चाँदनी चैन रितै कै ।
फूल निहारत सूत उठै री फुलेल भगे खुलि खेल बितै कै ॥
'देव' दुरे कब लौं रहिये जू अनोखे नये यहि नेह नितै कै ।
आँखनि ओट ही राखि भट्ट चित चोट सी लागति चंद चितै कै ॥

(३५)

भेष भये विष भावै न भूपन भूप न भोजन को कछु ईछी ।
मीचु की साथ न सोधे की साथ न दूध मुधा दधि माखन छीछी ॥
चन्दन नौ चितयो नहि जात चुभी चित माहि चितौनि तिरीछी ।
फूल ज्यों मूल मिला मम सेज, बिछौननि बीच बिछी मनीं बीछी ॥

(३६)

जोभ कुजानि न नेकु लजाति, गनै कुल-जानि न बात बगौ करै ।
'देव' हिये नय नेह लगाय, बिदेह की आँचनि देह दगौ करै ॥
जोव अव्यानु न जानत व्यानु, सुजान अजान के ध्यान रागौ करै ।
काहे को भेरो कढ़ावतु मेरो जु, पै गन मेरो न मेरो कगौ करै ॥

(११३)

(३५)

घंसीधर धरी घंसी घंम तेरे घंम ही की
घंसीघट ते ही छवि छाँह छविगई है ।
मेरे घोर मार मारचन्द्रिका बहे हैं,
खकैर घृजचन्द 'घोर दीठि गहराई है ॥
'देव' दुख मानि तानि पवनचलतानि पृथि,
घाघरी न पानि नई केनो बहिराई है ।
विमल विमल गुन गूँधि के गोपाल मरे,
मालती पुष्प माल हैं ही बहिराई है ॥

(३८)

पीते पन्ना रँगदारी ली की ली मृगन्धवारी,
ठाही घाई घाई घनी फूलनि के हार है ।
दाहिने अंतर ओर अंतर तमोर लिये,
सागुने लपेटे पट भोजन के धार मारे ॥
नित के निधम हितु हित के विन्यास 'देव',
विन के विन्यासे विन्यासे मद धार है ।
मन्पादन दीच ऐसे पन्ना दन दीच हली,
दाहिनी हूँ बहि हृदिनाली फली हार है ॥

(३९)

मल्ल मंजरी पंजरी ली है, मनेन के कोन मोधारन दीन ।
मृग न पनाम न लीइ बरे, परी प्रेम हरीद्वारा के चरन दीन ॥

(११४)

'देव' घरी पल जाति जुरी, अँसुआन के नीर उसास समीरन ।
आह न जाति अहीर अहे तुमै, कान्ह कहा कहौ काहू की पीरन ॥

(४०)

लाल विदेश वियोगनि बाल, वियोग की आगि जई भुरि भूरी ।
पान सों पानी सों प्रेम कहानी सों, प्रान ज्यों प्राननि यों मत हूरी ॥
'देवजू' आजु ही ऐवे कि औधि, सु बीतति देखि विसेखि विसूरी ।
हाथ उठायो उड़ाइवे को, उड़ि काग गरे परी चारिक चूरी ॥

(४१)

बालम बिरह जिन जान्यौ न जनम भरि,
वरि वरि उठै ज्यों ज्यों वरसै वरफराति ।
बीजन डोलावत सखीजन सुसीतहूँ मैं,
सौति के सराप तन-तापनि तरफराति ॥
'देव' कहै सामनि ही अँसुवा सुखात मुख,
निकसै न बात येती समझी सरफराति ।
लोठि लोठि परति करंटि दुख बाढ़ी लै लै,
मृखे जल सफरी ज्यों सेज पर फरफराति ॥

(४२)

रच्यौ कच गौर मृमोह-पना, भरि काक-पगवा मुख राखि अराल ।
घरी मुरली अलगधर लै, मुरली मुरलीन हँ 'देव' रसाल ॥
पीतम्बर काढ़नी पीतपटी करि, बालम घेप बनावति बाल ।
उरोजन गोज निवारिये को, उर पैन्ही मरोजनि की बनमाल ॥

(११५)

(४३)

धरें गुन्य पै गुन्य अक पै अक, परें परजंक में घालन घाल ।
उत्तम लै ऊँची कियो छल द्रिल, सरागी निया कोट रूप रमाल ॥
बधू मिर लोटि लियो भरि नैन, करोदन देन दियो नवनाल ।
चंद्र गुन्य कंचन सैल भयो, यही 'देव' नदी भई मोनि की माल ॥

(४४)

'देव' पुरैनि के पातनि पान मो, हैं जुग अक मिचान मोई नी ।
पीते के चंगुल में परिके, करनाउन घाइल हैं निघोरो ॥
मोक्ष के मंजु दली कदली, लरि केहरि गुंजार गुंज मोई नी ।
हरी मिहार रं री को, गुंजगुंज अहंरी हैं आहु अहंरी ॥

(४५)

आविनि मे पुतरी हैं गैं, दिवरा में दया हैं नय नूर नूर ।
अंगनि संग धमै योगदान हैं, जोय मे जोरनमूरि न दूरे ॥
'देव' लू प्यारे के न्यारे नय, गुन मो मन मानिक मोयें दूर ।
और निया मो मो ली दनियौ ररे, मो दनिया मे दिनी जय दूर ॥

(४६)

(११६)

(४७)

पीक भरी पलकें भलकें अलकें जु गड़ी, सु लसैं भुज खोज की ।
छाड़ रही छवि छैल की छाती में, छाप बनी कहुँ ओछे उरोज की ॥
ताहि चितौति बड़ी अँखियानि ते, तीखी चितौनि चली अति ओज की ।
बालम ओर बिलोकि कै बाल, दर्ई हनि खैंचि सनाल सरोज की ॥

(४८)

कंचनबेलि सी नौल बधू, जमुना-जल केलि सहेलनि आनी ।
रोमवली अवली कहि 'देव' सु गोरे से गात नहात सुहानी ॥
कान्ह अचानक बोलि उठे, उर बाल के व्यालबधू लपटानी ।
धाड़ के धाड़ गही ससवाड़, दुहूँ कर मारत अंग अपानी ॥

(४९)

नेज सँवारि मुधारि सवै अँग, आँगन के मग में पग रोपै ।
चन्द की ओरि चितौनि गई, निमि नाह की चाह बड़ी चित चोपै ॥
प्रातहि प्रीतम आये कहूँ, बसि 'देव' कही न परै छवि मोपै ।
प्यारी के पीक भरे अधरान, उठो मना कंपत कोप की कोपै ॥

(५०)

'देवजू' देखि हँसौ धिन दाँसो, त्रसौ मसिवाड़ सोहागिनि हैं कर्षा ।
गमनि औ दुग दूननि हौ, मुखदानि बड़ी बड़भागिनि हैं कर्षा ॥
गति गही कंचि रीति गही, मुचि दान गही अनुरागिनि हैं कर्षा ।
दाह उड़ाह सी पैठनी सी, हिय बैठनी बोर विरागिनि हैं कर्षा ॥

रसविलास

(१)

जोवन के रस भरी, हृन्त में प्रगति है,
 ऐदित ली आंगी दाज तदित वी भौर वी;
 उचके उचोई कय नये नलन नानी,
 निजमिली खोदनी विनारीदार वीर वी ॥
 गुलगुले, गोरे, गाल, रोमल पयोः
 मधायितु दोल, हृदय, नमिरा वी नैर वी;
 'देव' दित लारानि, दूरे लारान देव,
 दोरी दैने देवनि, रिगोरी पमनीर वी ॥

(२)

'देव' देवपत पवन मो मनु, लौरनि वी ननु नदि अगोनी ।
 नदरि नदि में है नदि पानी मी, आवने हाथ मरी रिज-नैनी ॥
 मेदनि पुनरि मयन रिगोरी वी, गोरी, गुमान-भरी, न-नोनी ।
 वृद्धन-पिप पमोटी मे नैनी मी, देरी मेनारि मनादि न नैनी ॥

(३)

(११ =)

आद्धे उरोज, हरा घुँघुचीन के, हाँकति हाँ कहि बैल निहारी ।
गातन ही दिग्गराय बटोहिन, वातन ही वनिजै वनिजारी ॥

(४)

तीनहँ लोक नचावति ऊक में, मंत्र के सूत अभून गती है ।
आपु महा गुनवन्त गुमाईनि, पाँइन पूजत प्रानपती है ॥
पैनी चितौनि चलावति चेटक, की न कियो बस जोगि-जती है ।
कामरू-कामिनि काम-कला, जगमोहन भामिन भानमती है ॥

(५)

रेनम के गुन छीनि छग करि, छार ते ऐँचि मनेह रचावै ।
'देव' दमौ अँगुरी कर पाँइ, वरै उरमाइ कै रंग मचावै ॥
मोठनि मी मनु पोहति मोतिन, जोहति सी छवि भौहँ चलावै ।
चचल नैननि नैननि में, पटवा की बहू नटवा मी नचावै ॥

(६)

प्रंतर पैठि बहूँ पट के कवि, 'देव' निरंतर ना उर आनै ।
देनि मिलाइ घने अपने गुन, तार मुँड किधौ देती मुजानै ॥
नाहि लिये कर में वर में, छिय जाको मिये मरमें सु बरानै;
वीन्ही दरेजन की दरजै, दग्गी की बड़ बरजी नहि मानै ॥

(७)

गान्धु मो ननु दूध मो जोवनु, है दवि ते अभिकौ उर छेटी ।
जा द्यानि आगे छपाकर छोछ, ममेन मुथा वमुथा मव मोटी ॥
नैनन नेट नुँद रहि 'देव', वृत्तावन धैन श्रियाग अगोटी ।
पैमी रमीली अलीगी अले, क्यै क्यै न लगे मनमोहन मीठी ॥

(११९)

(८)

आप पिदै अरु औरनि प्यावति, लाज के नुल ज्यों नृ मनि होई ।
जोवन जेव जफी सी कलारि, इकी मरु सी भुकि भूमनि होई ॥
गायनि शीभि रिक्तधनि ल्यौ, मनधारनि की सुख नृमनि होई ।
काम के घान हनी द्विष मै, पर दाहर घाइल घूमनि होई ॥

(९)

पूरन नरद-मनि-मगएल धिमरु जोनि,
मगएल विमान में अमरगट गुन गाहिनी ।
धमल अमोल ननि रमननि रूपी मदा,
सुन्दर नृमन्दिर अमन्द सुख पाहिनी ॥
आठौ पहर कर आठौ आठौ मिलि निधे,
मेघक में मेघक साध सदा दाहिनी ।
रूप रस पयो साधेयो देख देखन दी,
मिटानन पैठी मोहि मोहि मिदपाहिनी ॥

(१२०)

'देव' सुख साजै महाराज वृजराज आज,
राधा जू के सदन सिधारे सुनियत हैं ॥

(११)

मंजुल अखण्ड खण्ड नातये महल महा,
मण्डल चौवारी चण्ड मण्डल के चोटहीं ।
भीतर हू लालन के जालन विसाल जोति,
बाहर लुन्हाई जगै जोतिन के जोटहीं ॥
वरनन बानी चौर डारत भवानी कर,
जोरै रमा रानी ठाढ़ी रमन के ओटहीं ।
'देव' दिगपालन की देवी मुखदाशनि तै,
राधा ठकुराशनि के पावन पलोटहीं ॥

(१२)

गधे कही है कि तै छमियौ, व्रजनाथ किन अपराध किये में ।
कानन तान न भूलन वा ग्विन, आग्विन रूप अनूप पिये में ॥
प्रापने ओछे हिये में दुगड, दयानिधि 'देव' बसाय लिये में :
सीही प्रसाध बसी न कछे, पल आध अगाध निटारे हिये में ॥

(१३)

भरं गुन-भार मृदुपार मगमिज-भार,
गोभा रूप नागर अपार गुन आवरे ।
नगर नग ताल लाल अंगुरी निधुप माल,
नगर नगल ये अनूपर उनीवरे ॥

(१२१)

धरिए न पाँच पल्लि जायँ रागे चन्दसुग्गी,
 घागी गति मन्द पै मयन्दपनि होवये ।
 छितटि छुवन 'देव' मूनी होनि मलक,
 पलक हूजे ठाढ़ी हो पलक करी पाँवटे ॥

(१४)

धारी हो वयस घटी धतुरी हो, धड़े चुन 'देव' धलीमे पनाई ।
 मन्दरि हो मुषरी हो मलोंनी हो, नील भरी रस रस्य मनाई ॥
 राज-पट्ट पलि राजकुमारि, पट्टो मुकुमारि न भागी मनाई ।
 नैनक नेह के नाह बिना, पकचूर हो जैदे नई बिदनाई ॥

(१५)

साँधी मया सुंदन श्री सुन्दन श्री पैलि विरही,
 नाचि भरि पाढ़ी रस लोपनि भरति ।
 पाँसी नग गगनि निरुप नय निरुप लरि,
 पसन पसर विदमनि उरी पगलि हो ॥

(१२२)

ज्यों ज्यों रंगें पटरंग निचोरत, त्यों निचुरै अँग अङ्ग निकार्ई ।
दे छवि छापें करै मन छाप सु छीपनि बाल छिपै न छिपाई ॥

(१७)

राधे कही है कि तैं छमियौ, ब्रजनाथ कितैं अपराध किये मैं ।
कानन तान न भूलत ना खिन, आंखिन रूप अनूप पिये मैं ॥
आपने ओछे हिये मैं दुराइ, दयानिधि देव बसाय लिये मैं ।
हौं ही असाध बनी न कहूँ, पल आध अगाध तिहारे हिये मैं ॥

(१८)

मीठी महामृदु बोल कहै, लघु बोल कहै सुसकाइ सुभाइनि ।
'देव' भुलाइ बटोहिनि बाट, दुलावति चोरि लिये चित चाइनि ॥
रूप अनूप भरी नख तैं सिख, मृदम सुधार सही की रसाइनि ।
हाट के ऊपर हाटक बेलि सी, बेचती है हलवा हलवाइनि ॥

(१९)

चन्दगुनी गुरि मन्द हँसै मुख, मोनिनि कौ गहि खोल्यौ लवा मँ ।
'देव' मुना भरे पेंठ डटे कुच, भेंटि अघान सही मधवा मँ ॥
रूप-उभार कुँभार की जाई के, जोवन कौन नचायौ तवा मँ ।
धाम के बक बढायौ न को नट, बाकौ न कौनौ अघाम अँवा मँ ॥

(२०)

नर नर टोलत मगर नर मोहिये की,
ऊनरी चितन मध मुख नृनन्दनियां ।
जायक है निग फान-वायक जगारै, 'देव'
दिय को हृदय यों करन कर मैनियां ॥

(१२३)

प्रेमी अनुरागिन को हियरो रिकार्य,
 अरुमार्य नुरमार्य विरुमार्य नैन पैनिर्या ।
 बेनी नुदिये री पिकर्येनी नौ ननैनी पिर,
 पैनी पिनचनि को चपलनैनी नैनिर्या ॥

(२१)

घाट पर ठाढ़ी घाट पारन पटोहित थी,
 चेटक नी टोटि मन कावो न तरनि है ।
 लटकि पटकि पटु दिवो कनि मटवति,
 'देव' भुज-मूलनि नें फूल नें मरगि है ॥
 जोदन थी ऐंठ चठिलागि नौ डटौं पुच,
 ओठनि अमेठि पट ऐंठि जै भरनि है ।
 धोविनि जगोरी यह धोविनि पाग धी करि,
 नथौ-मुन रागत न ऊधम तरनि है ।

(१२४)

औरई साँभ तैं सूर उदै लगि, औरई साँभ लौं सूर उदौ तै ।
रूप की ओप अनूप धरी, पल बालि सी बाढ़त कालिह परौ तै ॥

(२४)

पीछे तिरीछे कटाछनि साँ, इत वै चितवैं री लला ललचौहैं ।
चांगुनी चैन चवाइनि कै चित, चाइ चढ़े हें चवाइ मचौहैं ॥
जोवन आयौ न पाप लग्यौ, कवि 'देव' रहैं गुरु लोग रिमौहैं ।
जो मैं लजैये औ जैये जितैं, तितैं पैये कलहु चितैये जौ मोहैं ॥

(२५)

कुंदन ने अंग नव जोवन सुरंग उठे,
उरज उतंग धन्य प्यौ जु परमतु है ।
मेहति किनारी चारी तन सुख सारी 'देव',
सीम सीमकूल अभमुख्यौ दरमतु है ॥
मेनिश जगव चढ़े मेनिनि साँ नीकी नथ,
हलत नरैनि नैं रूप सरमतु है ।
गोरी गजगोली लैनी नवल दलैया मेरे,
भाग भरे मुख पै मेलाग जरमत है ॥

(२६)

भौन भरे मगरे पूज साँ, भगवत नेरंड सील नृमादन ।
पानी पिपा नृनै मारो, चढ़े ओर नैं ओप नदी चित पादन ॥
दे सी कपल चरी मेरी नट मनि, मेरी ही चरी परी इन पादन ।
सीनिश ही मेनिया मुख भावनि, मेरा मुख भेनि मरति मृगदादन ॥

(१२५)

(२७)

फटिक्मिल्लानि सी सुधारयी सुधा-मन्दिर,

उदधि दधि की सो उफलाय उमंगे अमन्द ।

यादुर तैं भोतर ली भोनि न दिखारि देन,

दीर के नै फैन फैनी चाँदनी करमदन्द ॥

तारा सी नगनि तामें 'देव' जगमग होन,

मातिन की जाति मिल्यो मल्लिका की मकरन्द ।

आरमी नै अम्बर में आभा सी उजारी टाढ़ी,

प्यारी राधिका की प्रतिदिन्य सी लगन अन्द ॥

(२८)

गोरे गुण गोत हूँ हूँमनि कपोल धरे,

लोचन विलोचन लाल लौनी लीनी लाज पर :

लोभा लागे लान लखिये की 'कवि देव' दिय,

गोभा से उठन रूप सोभा के समाज पर ॥

बादले की मारी पर दामन विनारी जगमग,

जर-नारी भीनी मल्लिक के मात पर ।

मोनी गुण दोहन समकी पहुँचोवन न,

दोरन नईवनि की मनी दिखार पर ॥

(२९)

मारद के धारिद मी, दुष्ट सी मरत 'देव',

मरद धरन अन्तरि सी फल होत नै ।

(१२६)

सौधौ सुधा बिन्दु मकरन्द सी मुक्तमाल,
लिपत मनोज तन मञ्जु री सरीर है ॥
सील भरी सलज सलौनी मन्द मुसकानि,
राजै राजहंस-गति गुननि गहीर है ।
घेरी चहुँ ओरन ते मोरन की भीर भारी,
मोरन की भीर भै चकोरन की भीर है ॥

(३०)

सील भरी बोलत सुसील बानी सब ही सौ,
'देव' गुरजननि की लाज सौ लची रही ।
कोमल कपोल पर दीसै हरदी सी दुति,
चूँनी सी सकुच मुसुकानि मैं मची रही ॥
लालन की लाली अँखियान मैं दिखाई देत,
अन्तर निरन्तर ही प्रेम सौ पची रही ।
कुँवरि किसोरी मुख मोरी करै सखियन सौ,
चोराचोरी चित गति रोरी सी रची रही ॥

(३१)

पंकज से नैन बैन मधुर पियूष जैसे,
अधरनि धराधर सुधा सरवत की ।
'देव' कोई वाके जोग भोग वै अखण्ड सुख,
भौहनि प्रकासी जोति कासी करवत की ॥
सील की सुभाइनि कहूँ न काहू कवहूँ कि,
जवहूँ की तवहूँ करत गरवत की ।

(१२७)

इन्दिग मरुप इन्दुददनी श्रुप रूप,
जोदन डैजारी पिय प्यारी परदन की ॥

(१२८)

सगिन के मोच सुक-मोच नृगलोचनि,
रिसानी पिय मीं लु डन नैक ऐमि दिव्यो गान ।
नहज सुभाद सुमकाद डिटि गये हा,
मिसकि निसकि निमि ग्योयो पायो परभाव ॥
पौत जानै थोर बिनु बिराही बिरहार्जयभा,
हाय हाय परै पलुताय न दहू सुहाय ।
दहू पड़े नैतानि ते' प्योन्, भरि भरि 'देव',
गोरो सुख भोगे भोगे प्योरो सो दिखाने जाय ॥

(१२९)

नृमन न गाव धीनि प्योयो परभाव नयि,
गोरो मय सुगजन जानि के दगर है ।
हिपि रे लोकी अमिसारि हो निवार मोरे,
गुनिमे सुगन्ध धरे परदन अमर है ॥
भेष' दरे, दुर्जन मे नीर पुरि गरि प्योयो,
दुरि दुरि धीरे, परे परदन अमर है ।
देवता ही दामिनी मराना है बि लोके जाय,
मरारी मराना लगे निराने नगर है ॥

(१२८)

(३४)

खरी दुपहरी हरी भरी फरी कुंज मंजु,
गुंजन अलिपुंजन की 'देव' हिये हरि जाति ।
सीर नद नीर तरु तीरनि गहीर छाँह,
सोवै परे पथिक पुकारै पिक करि जाति ॥
ऐसे मैं किसोरी भोरी कोरी कुम्हिलानो मुख,
पंकज सों पाय धरा धीरज सौ धरि जाति ।
सोहै धाम स्याम मग हेरति हथेरी ओट,
ऊँचे धाम धाम चढ़ि आवत उतरि जाति ॥

(३५)

जानि परयो जोवन जनायो है मनोज जुर,
जगमगी जोति अङ्ग वाढ़ति नितै नितै ।
हरै हँसि हरि हरि लियौ हरि जू कौ हियौ,
हेरति हिरननैनी हितू सौं हितै हितै ॥
सीखी दिन चारिक तै तीखी चितवनि प्यारी,
'देव' कहै भरि दृग देखति जितै जितै ।
आछी उनमील नील सुभग सरोजन की,
तरल तनैनी मति तोरति तितै तितै ॥

(३६)

सावन मास सखीन मैं सुन्दरि, मन्दिर तें निकसी वनि ज्यौँ ससि ।
'देव जू' देखि छके छवि छैल, रख्यो न गयो हिय हारि हियो कसि ॥

(१२९)

टारि सकेच पगौ नव ऊपर, मेमेदि भाँति रटा नुन में घमि ।
टीठि वचाइ नचाइ कै सीस, नचाइ कै नैनन चाइ गई हंसि ॥

(३३)

आई घरमानैं तैं दुलाई लपभासुनुता,
निरखि प्रभानि प्रभा भान की पदं गई ।
चक चकघानि के चुकाये चक चोटनि सी,
चकित चकोर चकार्याय सी चकई गई ॥
'देव' नन्दनन्दन के नैननि जगनद गई,
नन्दजी के नन्दिनन चन्दमई दि गई ।
फळजनि कलिनमई फुलनि अगिन गई,
गोदुल की गलिनि नलिन गई पै गई ॥

(१३०)

(३९)

खोरि लौ खेलन आवतिये न तौ, आलिन के मत मैं परती क्यों ।
'देव' गुपालहि देखति ये न तौ, या बिरहानल मैं बरती क्यों ॥
वापुरी मंजुल आम की बाल, सुभाल सी हूँ उर मैं अरती क्यों ।
कोमल बोलि कै क्वैलिया कूरि, करेजनि की किरचें करती क्यों ॥

(४०)

मोहन की मूरति सो मो ही मनमोहनी सु,
मोहि महामोह कोह मो हिय मढ़ाइयतु ।
भौर भौर भीतर सरोज फरकत ऐसी,
अधखुली अँखियान उपमा मढ़ाइयतु ॥
आलिन की आन उर आनी तन आनी आन,
करत न कान ही सयान ही पढ़ाइयतु ॥
लोनौ मुखमण्डल पै पंडल प्रकास 'देव'
जैसे चन्दमण्डल पै चन्दन चढ़ाइयतु ॥

(४१)

चौर्यौ बंस विरद मैं वौरी भई वरजत,
मेरे बार बार वीर कोऊ पास बैठो जनि ।
सिगरी सयानी तुम विगरी अकेली हैं हीं,
गौहनमें छाड़्यौ मोसौं भौहनि अमैठो जनि ॥
कुलटा कलङ्किनी हैं कायर कुमति कूर,
काहू केन काम की निकाम ऐसौ ऐंठो जनि ।

(६६१)

'देव' तहाँ घैठिचतु जहाँ घुलि वट्टै. ऐ। तौ,
घैठी ऐ। विकल, कोठ मोहि मिलि घैठी जनि ॥

(६६२)

आक बाक बकति बिधा में चूड़ि चूड़ि जान,
षी की सुधि आये जी की सुभि नोहर नोहर दानि ।
कोह भरी कुहूँकि बिमोह भरी मोहि मोहि,
होह भरी छिति पै छली मी रोइ रोइ ऐनि ॥
बड़ी बड़ी पार लगि बड़ी बड़ी आगिन ते,
बड़े बड़े अंशुआ छिये में मोइ मोइ ऐनि ।
पाल बिन पालन विकल घैठी पार पार,
बपु मै बिपन बिष धीज पोट पोट ऐनि ॥

(६६३)

सूँपे हो निर्याह के नगोनि नमस्तर्प होनि,
'देव' न्याम नुसर के सौँनि नमस्तर्पे करों ।
बिचर बिचरि धीरि धीरन नुस्न गोले,
दिगई पी बेरना बिचर दिवसको करों ॥
जगमगे जौनि ज्वाल जगन मी जगनी न,
जगजारे जगनिनि जगन नम जगने करों ।
बरीगिहारे बरीगिहारे हो बरन ऐसी करों मनि,
बौल पी मी बरिगिहारे बरिगिहारे नमस्तर्पे करों ॥

(१३२)

(४४)

वीच मरीचनु के मृग लौं, अब धावै न रे सुन काहू नरिन्द के ।
ओस की आस बुझै नहिं प्यास, विसास डसै जिनि काल फनिन्द के ॥
भूलै न 'देव' निहारि असारनि, प्यास निसारत तार के विन्द के ।
इन्दु सौं आनन तू जु चितै, अरविन्द से पायन पूजि गुविन्द के ॥

प्रेम-चन्द्रिका

(१)

स्वापुन में रम में रहनें, बहनें बनि राधिका कुल दिवारी ।
 स्यामा मराहत स्याम कि पागटि, स्याम मराहम स्यामा हि नारी ॥
 एकटि दर्पन देखि कटि नय, नीके लगौ प्रिय स्यौ कटि स्यारी ।
 'देव जू' बालम बाल को बाहु, बिलोक भई बनि ही बनिवारी ॥

(२)

भार में भाइ भेगी निरधार है, जाय पैसो डरमो न लदेगी ।
 री प्रेमराइ गिरी गटिरी गाँठ, पैरे छिरी 'नौ' प्रिये नहि भेगी ॥
 'देव' कटु अपमो बलु ना, रम कालम स्याम बिर्म भई केगी ।
 बेग ही वृष्टि गई पैरिषो, 'पेरिषो' मरु को मरिषो भई भेगी ॥

(३)

(१३४)

अपनो दुख औरन को उपहासु, सवै कवि 'देव' जताइए तौ ।
घनस्यामहिं नेकहु एक घरी को इहाँ लगि जो करि पाइए तौ ॥

(५)

रावरो रूप रह्यो भरि वैनन, वैननि के रस सों सुति सानो ।
गात में देखत गात तुम्हारेई, बात तुम्हारिये बात बखानो ॥
ऊधो हहा हरि सो कहियो, तुम हौ न इहाँ यह हौ नहिं मानो ।
या तन से बिछुरे तो कहा, मन ते अनते जु बसौ तब जानो ॥

(६)

जीभ कुजाति न नेकु लजाति, गनै कुल-जाति न बात बह्यो करै ।
'देव' नयो हिय नेह लगाय, विदेह कि आँचन देह दह्यो करै ॥
जीव अजान न जोनत जान, जो मै न अयान के ध्यान रह्यो करै ।
काहे को मेरो कहावत मेरो, जु पै मन मेरो न मेरो कह्यो करै ॥

(७)

को कुल या ब्रज गोकुल दो, कुल दीपसिखा सी ससी सी नहीं भरि ।
त्यों न तिन्हें हरि हेरत री, रँग राती न जो अँगराती गरे परि ॥
जो नवला नव इंदुकला, ज्यों लची परै प्रेम रची पिय सों लरि ।
भेटत देखि बिसेखि हिये, ब्रज भूभुज 'देव' दुहूँ भुज सो भरि ॥

(८)

पीछे तिरीछ चितौनि सोई, इत वै चितवै री लला ललचौहैं ।
चौगुनो चाउ चवाइन के, चित चाव चढ़ी है चवाउ मचौहैं ॥
जोवनु आयो न पापु लग्यो, कवि 'देव' रहैं गुरु लोग रिसौहैं ।
जी में लजैये जु जैये कहूँ, तित पैये कलंक चितैये जु सोहैं ॥

(६३५)

(९)

प्रेम कहानिन मो पहिले, हरि कानन आनि समीप किये मैं ।
चित्र चरित्र न मित्र भये, सपने में ह मोहि निन्नाय किये मैं ॥
'देव' जूँ दूरि ते दौरि दुराद, कै प्रेम निग्गाह दिग्गाह किये मैं ।
धारिज मे धिकने सुख पै, निकसे इन है निकसे न किये मैं ॥

(१०)

घारे घों उगरे सब जैने को, हीं न सुखें पठयौ बलिगरी ।
मेरे मो जीवन 'देव' गरी धनु, या प्रज पार्ह मैं भीख बिगरी ॥
जानै न रीति अधादन की, निन गादन मैं दनभूमि निहारी ।
चाहि फोक पहिचाने कहा, पछु जाने का मेरो कृतकारि ॥

(११)

'देव' न देखति हीं दुनि दुनरी, दुमे हैं आ दिन मे प्रज भूष मैं ।
पूरि रही री यही भुनि वानन, ज्ञान न ज्ञानन जोर अमूर मैं ॥
मे प्रीतिगर्वा मगिगर्वा न हमारियै, ज्ञान मिनी ज्ञान पदु यों दूर मैं ।
पोटि उसाह न पादुय केनि, बसाह गरी रेगसाह के कर मैं ॥

(१२)

प्रीतिन प्रीतिन जगहो रही, सुनिव भनि वानन हो सुखगरी ।
'देव' रही दिय मैं धन है, न करी, निमरै, दिमरै न निमारी ॥
कृप मे प्राप्त यों सुख मयाप हो, है जनि कृप रही पदपारी ।
जगरी वागरी दिये भरी दूरि, सु दूरि न जोरनभूरी हमारि ॥

(१३६)

(१३)

लाल बुलाई है, को हैं वे लाल, न जानती है तौ सुखी रहिबो करि ।
री सुख काहे को देखे विना, दिखसाधन ही जियरा न परचौ जरि ॥
'देव' तौ जानि अजान क्यों होति, इती सुन आँसुन नैन लये भरि ।
साँची बुलाई, बुलावन आई, हहा कहु मोहि कहा कहिहैं हरि ॥

(१४)

साँसन ही सों समीर गयो, अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि ।
पौन गयो गुन लै अपनो, अरु भूमि गई तनु की तनुता करि ॥
'देव' जियै मिलिवेई की आस, कै आसहू पास अकास रह्यो भरि ।
जा दिन तें मुख फेरि हरे हँसि, हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि ॥

(१५)

जागत जागत खीन भई, अब लागत संग सखीन को भारो ।
खेलिवोक हँसिवोक कहा सुख सों वसिवो विसे वीस बिसारो ॥
प्यौ सुधि दौस गँवावति 'देवजू', जामिनि जाम मनौ जुग चारो ।
नीरजनैनी निहारिये नैननि, धीरज राखत ध्यान तिहारो ॥

(१६)

एकै अभिलाप लाख लाख भाँति लेखियत,
देखियत दूसरो न 'देव' चराचर में ।
जासों मनु राचै तासों तनु मनु राचै रुचि,
भरि कै उवरि जाँचै साँचै करि कर में ॥
पाँचन के आगे आँच लागे ते न लौटि जाय,
साँच देख्यो प्यार की सती लौं बैठि सर में ।

(१३५)

प्रेम नो कहन कोई ठाकुर न पैठो मुनि,
पैठो गढ़ि गढ़े तो पैठो प्रेम नर में ॥

(१३६)

कैसी कुलधरू कुल कैसी कुल धरू पौन,
नू है चह पौन पृंदे काह कुलटाहि री ।
कहा भयो तोहि कहा बाहि तोहि मोहि कोषी,
कीसी और काहँ और कहा न गी काहि री ॥
जानि हीते जाति कैसी जान को है जानि प री,
तोषी ही विजानि भोगी मोषी न विजानि री ।
लाज गह, लाज गह, लाज गहिरे ही री,
पंच हँसिहि री, ही तो पंचन मे साहिरी ॥

(१३७)

शोचत अगाध मिथु मर्याही को उमरि जायो,
गामी नीनो ह्युह दृष्टि गये पर संग में ।
बारि बारि आसुर लिपि ज बारि बाधन,
न मर्यादे पति पति पौन उरि विन भोग में ॥
अभिमत नै अभिमत अगाधन को रीति विन,
अहं वन अहं अहं वन अहं वन में ।
जो ही मन मेरो मेरे वास को न गतो मर्यादे,
अधम वन ही उरि अगाधनो अधम वन में ॥

(१३८)

(१९)

वारिधि विरह बड़ी वारिधि की बड़वागि,
बूढ़े बड़े बड़े जहाँ पारे प्रेम पुल ते ।
गरुओ दरव 'देव' जोवन गरव गिरि,
पर्यो गुन दूटि दूटि बुध नाउ डुलते ॥
मेरे मन तेरी भूलि मरी हौं हिये की सूल,
कीन्ही तिन तूल, तूल अति ही अतुल ते ।
भावते भोड़ी करी, माननी ते मोड़ी करी,
कौड़ी करी हीरा ते, कनौड़ी करी कुल ते ॥

(२०)

रीम्मे सुख पाऊँ औ न खीम्मे सुख पाऊँ मेरे,
रीम्मे खीम्मे एकै रँग राग्यो सोई रागि चुक्यो ।
जस अपजस कुवड़ाई औ बड़ाई गुन,
औगुन न जान्यो, जीव जाग्यो सोई जागि चुक्यो ॥
कौन काज गुरु जन वरजैं जु दुरजन,
कैसी कुल नेम प्रेम पाग्यो सोई पागि चुक्यो ।
लोगन लगायो सु तौ लाग्यो अनलाग्यो 'देव',
पूरो पन लाग्यो मन लाग्यो सोई लागि चुक्यो ॥

(२१)

बिन जान्यौ वेद ते तौ वाद कै विदित होहि,
जिन जान्यो लोक तेऊ लीक पै लरि मरो ।

(१३९)

जिन जान्यो तपु तीनों तापन भों तपि जिन,
 पंचाग्निनी नाथ्यो ते समाग्निन परि मने ॥
 जिन जान्यो जोग तेऊ जोगी जुग जुग जियो,
 जिन जान्यो जोगि नेऊ जोगि ते जरि मने ।
 ही तो 'देव' नंद के कुमार तेरी घेरी भरे,
 मेरी उपहास क्यों न कोटिन करि मने ॥

(२०)

कुविजा किनेव रुपि जा के रहे आपु 'देव',
 अथ अपनारी अथ नारी जिन मनिषा ।
 आरति न राखत निवारत नरक ही ते,
 तारत निनोक परमोदक दो कनिषा ॥
 बनये सुतासुबाद सुननों मने 'जरी',
 गोपिन दो मृगो मन प्रेम की लपनिषा ।
 कुंजन में देखिई ज भवान को मनिषि नीरे,
 पाय है न घेरिई मनिषिनी के मनषा ॥

(२१)

कंसत दियो, न दियो पैरा जगरी दरी,
 तेसी दुखे मनोषी देख नीउ मे समन देख ।
 अदर हरेया हरि, अदर गेरो होत,
 तेहि के तेसी न दोरे, तेसी को तेकर देख ॥
 'देव' रुपि देखिदे दो मोहन है लखी लखी,
 मोहन में लख लखी, मोहन भवान देख ॥

(१४०)

हमरे वसन देहु, देखत हमारे कान्ह,
अजहूँ वसन देहु, ब्रज में वसन देहु ॥

(२४)

चारै कोटि इंदु अरविंदु रसविंदु पर,
मानै ना मलिन्द विन्दु सम कै सुधासरो ।
मलै मल्लि मालती कदम्ब कचनार चम्पा,
चँपेहू न चाहै चित चर न टिकासरो ॥
पदुमिनि तू ही पटपदु को परम पदु,
'देव' अनुकूल्यो और फूल्यो तौ कहा सरो ।
रस, रिस, रास, रोस, आसरो सरन, बिसे,
बीसो विसवास रोकि राख्यो निसि वासरो ॥

(२५)

प्रेम चरचा है अरचा है कुल नेम, न,
रचा है चित और अरचा है चित्तचारी को ।
छोड़्यो परलोक नरलोक बर लोक कहा,
हरख न सोक न अलोक नर नारी को ॥
वाम, भीत, मेह न विचारै सुख देह हू को,
प्रीतम सनेह डरु वन न आँध्यारी को ।
भूलेहू न भोग, बड़ी विपति, वियोग विथा,
जोगहू ते कठिन संजोग परनारी को ॥

(१४१)

(२६)

कोऊ कटौ कुलटा, कुलीन, अकुलीन कटौ.

कोऊ कटौ रंकनि पलंकनि, कुनारी टौ ।

कैसो परलोक, नरलोक, घर लोकन में.

लीन्हों में अलोक लोर लीकन ने न्यारी टौ ॥

तन जाहि, मन जाहि, 'देव' सुन जन जाहि.

जीव क्यों न जाहि, टेक टरनि न टारी टौ ।

बुन्दायनचारी चनचारी के सुवृट पर.

पीतपटवारी यदि मूरति पै चारी टौ ॥

(२७)

मन्द मलामोदक नभुर नर सुनियन.

पुनियन नीम घेंघी चाम्पी टौ री चाम्पी टौ ।

मोकुल की कुलबधू को कुल मरगदं नही.

दो कुल निर्दमं लाज नामी टौ री नामी टौ ॥

पाहि भी भिम्यावन, निरि को जाहि मध होय.

सुधि सुधि पावे पाव नामी टौ री नामी टौ ।

'देव' मजवासी वा दिमारी को भिरौनि, पटि.

नौलो टौ री लौलो, पाव नामी टौ री नामी टौ ॥

(२८)

'देव' दीनि पाव बीरि, बीर नने लोपा जाहि.

नमस ममस ममान पाव टौ न सुनि ।

(१४२)

दूरि दुख दुंद राखि, मुंदरा पहिरि कान,
ध्यान सुंदरानन गुरु के पग पूजिए ॥
भृंगी की टकी लगाय, भृंगी कीट कै मनु,
विरागिन हूँ वपु विरहागिनि मैं भूजिए ।
केली तजि राधिका अकेली, होय जोगिन तौ,
अलख जगाय हेली चेली चलि हूजिए ॥

(२९)

नेवर के वजत कलेवर कँपत 'देव',
देवर जगै न लगे सोवत तनक ते ।
ननद न छीछी त्योरी तोरति तिरीछी लखि,
बीछी कैसो विपु बगरावेगी भनक ते ॥
देखिए कठिन साथ गहौ जू हठि न हाथ,
कैसे कहाँ जाहु नाथ आये हौ बनक ते ।
बस ना हमारो रंग रस न बनत, चाँकि,
रसना दसन दावै रसना भनक ते ॥

(३०)

अंजन सों रञ्जित निरञ्जनहि जानै कहा,
फीको लगै फूल रस चाखे हौ जु बौड़ी को ।
तूरज बजाय सूर मूरज को वेधि जाय,
ताहि कहा मवद मुनावत हौ बौड़ी को ॥
ऊधो पूरे पारग्यो हौ परखे बनाय 'देव',
वार ही पै दोरी पैरवैया धार औड़ी को ।

(१४३)

मनु मनिका है हरि हीरा गाँठि बाँधो हम,
तिन्हें तुम धनिज धतायन ही पौड़ी को ॥

(३६)

मोहि तुम्हें अन्तर मन न गुन जन गुन,
मेरे, ही तुम्हारी, है तक न पिचलन ही ।
पुरि रोया तन में, मन में न आवत ही,
पद्म पृथि देखे, पद्म पाद ना हिलत ही ॥
ऊँचे यदि रोई, कोई दिन न दिग्याई 'दिव',
गावन को ओट धँडे गावन गिलत ही ।
ऐसे निरमोही नदा मो ही मैं समन अरु,
मो ही से निरमि पैरि मोही न मिलत ही ॥

(३७)

फल फलि, फूल फुलि, पैलि पैलि, कुँज कुँज,
नगरि नगरि, शहर कुँज पद कोट मे ।
हिल मिलि ऐलिन को ऐलिन परनि गदं,
ऐलिन पिछोकि पद मर की पिचोइ मे ।
नंदल की पौन पर टाँके हैं रमिय देखे,
मोहन न मोहि मोन मोनो मे मोह मे ।
साधन मनन भूरी साधन हो, दूध गिरे,
साधन के हाथन मे, मोहन के मोह मे ।

(१४४)

(३३)

अंव कुल, वकुल कदंव मल्ली मालती,
मलै जन को मींजि कै गुलावन की गली है ।
को गनै अलपतरु, जी सों कलपतरु,
ता सों विकलप क्यों अलपमति अली है ॥
चित जाके जाय चढ़ि चम्पक चपायो कोन,
मोचि मुख सोचिहै सकुचि चुप चली है ।
कंचन विचारे रुचि पंचन में पाई 'देव',
चम्पा वरनी के गरे परयो चम्पकली है ॥

(३४)

जौन जी में प्रेम, तव कीजै व्रत नेम जब,
कंज मुख भूलै, तव संजम विसेखिए ।
आस नहीं पी की, तव आस नहीं बांधियत,
सांसन कै सांसन को मूँदि पति पेखिए ॥
नख ते सिखा लौं सब स्याममई वाम भई,
बाहिरहू भीतर न दृजो देव देखिए ।
जोग करि मिलै जो वियोग होय बालम जु,
ह्यौं न हरि होय तव ध्यान धर देखिए ॥

(३५)

मोहि में छिपे हो मोहि छावावन न छाँहौ, तापै,
छाँट भयं होलत, इत पै मोहि छरिहौ ।

मच्छ मुनि कच्छप, कराट नरमिह मुनि,

घामन परसुराम रावन के शत्रु ही ॥

‘देव’ धनिदेव देव दानव न पावें भेव,

फो हो जु फटो जु जो टिये यो पोर हरिही ।

फहत पुकारे प्रभु परनानिधान बान्ह,

फानि मृद घोष हँ फलंघी फाटि फरिगौ ॥

(३६)

जोगहि निर्भीक ऊधो जो राहिके राव हन,

सो न मन हाथ, फलनाथ साथ रहे दुही ।

‘देव’ पंचमायक नपाय गोलि पंचनमै,

पंचह परनि पचासुन सो ऊधे दुही ॥

कुलपथू हँके हाथ कुलटा फाटि थर,

गोण न मै कुल मै फलंघ गिर रहे दुही ।

धिन होत तित न हमारे धिन पोर सो नौ,

चाहो धिनफोरनि धिनौत धिरा रहे दुही ॥

(३७)

दाह दून फालन बिहीना नव दण्ड के,

सुगन भिगो न सोरे एन हथि मारो रहे ।

दधन भुजारी फेरो फोर दण्डारी ‘देव’,

देहिना हलारी हुलमाई दरलारी ॥

पूरित पराग सों उतारा करै राई नोन,
कुंद कली नायिका लतान सिर सारी दै ।
मदन महीप जू को चालक वसंत ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै ॥

— —

सुजान-विनोद

(१)

भारी भर्यो विवि भीहनि रूप, सुडोर हूँ कवि लोगनि दोहे ।
नीको चुनी को लिलार में टोको, सुटेकि गिलार मरे गुन गोरों ॥
घालपनो तननापनो घाल को, 'देव' परापरि कंचन सोहे ।
दोऊ जवाहिर जौहरी मैंन, सुनैन पलानि तुला धरि मोहे ॥

(२)

'देव' में सीस बमार्यो सनेह मो, भाल भृगुमद बिहूँ के भाग्यो ।
कंचुकी में सुपरयो करि सोया, लगाय लियो हर मो अमिलारो ॥
ते मखतूल सुदे गहने, रन भूरनयन निगार के पालो ।
सायरे लाल को सायरो रूप, में मैंनो को कलरा कनि मारो ॥

(३)

अरिके बहूँ खालु खरेसी गहने, गरिबे हरि के गुन रूप सुहो ।
जगह सपनो पहिराहारा, सुनबकाय के भाव के भाव सुहो ।
'कवि देव' कही किन कोऊ बहूँ, तब के जनके मनुमन सुहो ।
मय हो मो गहने कहे पालावहूँ, बहूँ देव की भाव मोहन सुहो ॥

(४)

ना यह नंद को नोदो है, दुखनन को मोन बहूँ लखो हो ।
हो हो बहूँ गुन हो कवि 'देव' कही, बहूँ के मूँछट के भाव हो ॥

(१४८)

भेटती मोहि भट्ट केहि कारन, कौन किधौ छवि सों छकती हौ ।
कैसी भई सो कहौ किन कैसे हू, कान्ह कहाँ हैं, कहा बकती हौ ॥

(५)

केसरि किसुक औ वरना, कचनारनि की रचना उर सूली ।
सेवती 'देव' गुलाब मलै मिलि, मालती मल्ली मलिदनि हूली ॥
चंपक दाढ़िम नूत महाउर, पाँडर डार डरावनि फूली ।
या मयमंत वसंत में चाहत, कंत चलयो हमही किधौ भूली ॥

(६)

काम कलोलनि केलि करी निसि, प्रात उठी थिर है थहराय कै ।
आपने चीर के धोखे बधू, पहिरो पट पीतम को फहराय कै ॥
बाँधि लई कटि सों वनमाल, न किंकिन बाल लई ठहराय कै ।
भावती की रस रंग कि दीपति, संग की हेरि हँसी हहराय कै ॥

(७)

होरी को सोरु पर्यो ब्रज पौरि, किसोरी को चित्त विछोहनि छीज्यो ।
दौरि फिरै दुरि देखवे को, न दुरे मनु ओज मनोज की मीज्यो ॥
केसरिया चकराँधत चीर, ज्यों केसरि वीर सरूप लसी ज्यों ।
लाल के रंग में भोजि रही, सु गुलाल के रंग में चाहत भीज्यो ॥

(८)

सांवरो सुंदर रूप विमाल, अनूप रसाल बड़े बड़े नैन री ।
या वन आवत गैयनि लै नित, 'देव' दिगैयनि के चित चैन री ॥
में हूँ गुनी मो कहा कहाँ लाज की, बात कहूँ मखि तू कहिए न री ।
वा जग वंचक देने बिना, दुखिया अखियान न रंचक चैन री ॥

(१४९)

(९)

प्राण सों प्राणपत्नी सो निरन्तर, अन्तर अन्तर पारन रेगी ।
'देव' कहा कहीं बाहर हूँ, घर बाहर हूँ रहीं भीत नरेगी ॥
लाज न लागनि लाज अहं, नाहि जानी मैं आहु अमाजिन प रे ।
देवन दे हरि को भरि नैन, धरी किन एक नगी कनि मेरी ॥

(१०)

मंजुल मंजरी पंजरी नी छै, मनोज के अंज मरहानि सीरन ।
भूख न प्यास न नीद परै, परी प्रेम अजीवन के जुग जीरन ॥
'देव' परी पल जानि घुगी, प्रेमुषानि के नीर उमान ममोवन ।
आह न जाति अहीर आहै तुम्हीं, फाट कहा कहीं फाट के सीरन ॥

(११)

'देव' जो बाहर हो बिहरे, नौ मगौर अगौर मन बिहरे ॥
भीतर भौन ससै बनुषा छै, नुवा नुवा नुपि कनिहरे ॥
राखिछौ जो परबिहारे, सररंद मिलै नौ मनिहरे ॥
जैव सौं, राखि गोबिन्द, कै इन्दुमुखी लखि हरे ॥

(१२)

साधुरे भौगनि प्रगनि भौगनि, धौगनि धौगनि देनि कपो ॥
केसनि दिन एवम एवौ, विरहान नैगनि रंग गयो ॥
होने पदमरनि पंदरक लखनि, नै कदमरनि भेग गयो ॥
रोबिन रागनि नूत परगनि, रंग री दारनि कान मयो ॥

(१५०)

(१३)

हैं भई दूल्हा, वे दुल्ही, उलही सुख बेलि सी केलि घनेरी ।
हैं पहिरे पिय को पियरी, पहिरी उन री चुनरी चुनि मेरी ॥
'देव' कहा कहीं कौन सुनै, औ कहा कहे होत कथा बहुतेरी ।
जेहरि मेरी धरै नित जे हरि, ते हरि चेरी के रंग रचे री ॥

(१४)

वारियै वैसे बड़ी चतुरै है, बड़े गुन 'देव' बड़ीयै बनाई ।
सुंदरै है सुघरै है सलोनी है, सील भरी रस रूप सनाई ॥
राजबधू बलि राजकुमारि, अहो सुकुमारि न मानौ मनाई ।
नैसिक नाह के नेह बिना, चकचूर हूँ जैहँ सबै चिकनाई ॥

(१५)

होरी मैं आजु भिजै रँग रोरी कं, आपनो प्यो अपने बस कै लै ।
यों कहि 'देव' सखी गहि गोरी को, ल्याई हँ गोकुल गाँव की गैलै ॥
लाज की गारी सुनी कबहूँ नहि, गावत लोग लगावत छैलै ।
खलति फागु नई दुल्ही, दग आंसुनि लीलि उसासनि लै लै ॥

(१६)

भारें हो भूरि भुराई भरे, अरु भाँतिन भाँतिन कै मन भाये ।
भाग बढो बहि भावनी को, जेहि भावने लै रंग-भौन यमाये ॥
भेद भलोई भली विधि सों, करि भुलि परे कियौ काहूँ भुलाये ।
लाल भले हो भला सुख दीनो, भली भई आजु भले बनि आये ॥

(१५१)

(१७)

लोग लुगाइनि होरी लगाय, मिलानिली चारु न भेटन ही पन्थो ।
'देव' जू चंदन चूर कपूर, मिलारन लै लै लपेटन ही पन्थो ॥
ये यहि औसर आवे हर्षा, समुदाय हियो न समेटन ही पन्थो ।
कोनी अनाकनियो मुग्य मोरि, पै जोरि भुजा भट्ट भेटन ही पन्थो ॥

(१८)

भूजि रही विरहाजुर से। समौ पावन जानि जनीनु जगई ।
पौरि पनो रंग केसरि को गहि, पोरि मुलाल में पाल जगई ॥
समि लई गहिरी कहि री, हमसें उनसें छप पौन जगई ।
ऐसे भये निरमाही मदा, हरि दाय हमें दिन होरो जगई ॥

(१९)

(१५२)

पानी पान भोजन, सुजन, गुरजन भूले,
 'देव' दुरजन लोग लरत खरे परो ॥
 लागो कौन पाप, पल एकौ न परति कल,
 दूरि गयो गेह, नयो नेह निथरे परो ।
 होतो जो अजान, तौ न जानतो इतीकु विथा,
 मेरे जिय जान तेरे जानिवो गरे परो ॥

(२१)

जगमगे जोवन जराऊ ताखनकान
 ओठन अनूठे रस-हाँसी उमड़े परत ।
 कंचुकी मय कसे आवै उकसे उरोज—
 बिन्दु बदन लिलार बड़े बार घुमड़े परत ॥
 बड़े बड़े नैन कजरारे बड़े मोती नक्,
 बड़ी बरुनीन छोड़ाहोड़ी हुमड़े परत ।
 गोरे मुख मेत सारी कंचन किनारीदार,
 'देव' मन झुमका झुमक झुमड़े परत ॥

(२२)

मृगत न गान थीत आई अधरान अरु,
 सोये सब गुरजन जानि कै बगर के ।
 छिपि कै द्योली अविमार को केवार खोलै,
 नुल ने नत्राने चारु चन्दन अगर के ॥
 'देव' कहै भौर गुंज आवे कुंज कुंजन ने,
 पृदि पृदि पीछे परे पादरु अगर के ।

(१५३)

देवता की दामिनी ममाल किर्वा जोनि जागि,

नगरें भयत जागे नगरें नगर के ॥

(२३)

आवन सुन्यो मनभावन को भावनी ने,

आगिन अनंद आनंद तरकि तरकि उठे ।

'देव' दग दोऊ दौरि जान द्वार देहरी ली,

देहरी भी गानै गरी नरकि नरकि उठे ॥

टाएलें फरगि टाएलें न पाय पाय रंग,

गएलें निहारी गरी नरकि नरकि उठे ।

नरकि नरकि नारी दरकि दरकि आंगी,

आनक उचौटे पच फरकि फरकि उठे ॥

(२४)

पालन धिरक जिन जान्यो न जनन भगि,

धरि धरि उठे द्यो द्यो धरमै धरफ धरि ।

पीजन तुलावन गरी जन मेा पीता मे,

सौमिन धरफ मन गानै नरकि नरकि ॥

'देव' कहैं सानि मेा पीलस नरकि नरकि,

निरमै न पान देसो निरमो नरकि नरकि ।

निधि लीटि पच धरि नरकि नरकि नरकि,

नरि नर नर नर नर नर नर नर नर नर ॥

(१५४)

(२५)

कंचन किनारीवारी सारी तास की मैं—

आसपास भूमी मोतिन की झालरि एकहरी ।

सीसफूल वेना वेंदी वेसरि और वीरनि की,

हीरनि की भीर मैं हँसति छवि छहरी ॥

चन्द्र से वदनि भानु भई वृषभानुजाई,

नयन लुनाई की उवनि की सी लहरी ।

कास धास घोड़्यौ पविलतु घनस्याम मन,

क्यों सहँ समीप 'देव' दीपति दुपहरी ॥

(२६)

पीछे परचीनै' चीनै' तंग की सहेली आगे,

भार डर भूपन अगर डारै छोरि छोरि ।

चौकति चक्रेरनि त्यो मोरै मुख मोरनि त्यो,

भौरनि की ओर भीर हैरै मुख मोरि मोरि ॥

एक कर आली कर ऊपर ही धरे हरे,

हरे पग धरै 'देव' चलै चित चोरि चोरि ।

दृजे हाथ माथ लै सुनावनि वचन राज,

हंसन चनावनि मुकुति माल तारि तारि ॥

(२७)

मीनल मडल मडा मीनल पटोर पंक,

मीनल दे लोप्यो भीति छिनि छाती दहर ।

(१७५)

सीतल मल्लि भरे सीतल विमल कुंड.

मीतल विमल जलजंत्र धारा छार्ने ॥

मीतल विद्युन्ननि पै मीतल विद्युन्न मेज,

मीतल दूकूल पैनि पौरे हैं कपारे ।

'देव' दोऊ सीतल अलिंगननि देन लेन,

मीतल सुगंध मंद माहव की छार्ने ॥

(२८)

दुलही दुलह नौल पाए अनुकूल फरे,

रुलहे किरत गोपी गोपनि की भांग में ।

तैमिये ससंत पाँच पाय नों परचि नार्ने,

रंग रौंघ कीच नार्ने केनरि पी नीर में ॥

फरत न कानि जानि भरन भुजानि 'देव',

धरन न धीर डर अपिछ अपीर में ।

संपरारि टंदर में वृष्टि गंत दोऊ मुख,

गोभा के लटंदर में लखर लखीर में ॥

(२९)

तेरो पानो फारि परि जीव रगो लरि लरि,

हागे पाँच परि परि गच्छे न हो केनार ।

ललन किलोरे 'देव' पल न ललाये नय,

मों पल न दीनों में ललन ललनार ।

ऐसे लिलोरो मों लगे लरि ली लखरे,

लखरि लखरी लखरी लखरी लखरी लखरी ॥

(१५६)

ए रे मन मेरे तैं घनेरे दुख दीन्हे अब,
ए केवार दैके तोहि मूँदि मारौ एक बार ॥

(३०)

ना खिन टरत टारे आँखि न लगत पल,
आँखि न लगे री स्याम सुंदर सलौन से ।
देखि देखि गातन अघात न अनूप रस,
भरि भरि रूप लेत लोचन अचौन से ॥
ए री कहू को हो, हौ सु को हौ कहा कहति हौ,
कैसे बन कुंज देव देखियत भौन से ।
राधे हौ सदन बैठी कहति हो कान्ह कान्ह,
हा हा कहि कान्ह वे कहाँ हैं को हैं कौन से ॥

(३१)

हित की हितू री नहिं तू री समुझावै आनि,
सुख दुख मुख सुखदानि को निहारनो ।
लपने कहाँ लौ बालपने की विकल बातै,
अपने जनहि सपनेहू न बिसारनो ॥
'देवजू, दरस बिनु तरसि मरयो हो पग,
परसि जियैगो मन वैरी अनमारनो ।
पतिव्रत व्रती यै उपासी प्यासी आँखियन,
प्रात उठि पीतम पियायो रूप पारनो ॥

(१५७)

(३२)

कैल के वगीचे लीं अकेली अकुलाइ आई,
नागनि नवेली बेली देखन हरि परी ।
कुंज पुंज तीर ताँ गुंजत भँवर भदि,
सुगन्ध समीर नारे नीर की नगनि परी ॥
'देव' तेहि काल गूँधि ल्याई माल गालिन नो,
देव्यत विरह बिष ब्याल की लहरि परी ।
छाह भरी छरी नो छर्यली छिनि नाँहि फूल,
छरी के छुवन फूल छरी नो छहरि परी ॥

(३३)

पामरिन पाँवदे परे हैं पुर पौरि लाग,
धाम धाम धूपनि के धूम धुनिवतु है ।
कातूरी अतरनार, सोयारन, पनसार
दीपक हलारनि सोयार सुनिवतु है ॥
मधुर मृदंग राग रंग के मंगनि है,
मंग मंग गोपिन के गुन गनिवतु है ।
'देव' सुगन्धान, माधवान मधवान अकु
राधाजू के मदन मन्धारे सुनिवतु है ॥

(३४)

भारें रोति रोति मे प्यारी बिष अर्पनि की,
सुनि सुनि रोति रोति मयन भरति है ।

(१५८)

मेरि मेरि बदन निहारत बिहार भूमि,
घोरि घोरि आनँद घरी सी उघरति है ॥
‘देव’ कर जोरि जोरि बंदत सुरन गुरु-
लोगन के लोरि लोरि पाँयन परति है ।
तेरि तेरि माल पूरै मोतिन की चौक,
निबछावरि को छोरि छोरि भूषन धरति है ॥

(३५)

छीर की सी लहरि छहरि गई छिति माँह,
जामिनी की जेति भामिनी को गनु ऐँठ्यो है ।
ठौर ठौर छूटत फुहारे मनो मोतिन क,
‘देव’ बनु याको मनु काको न अमैठ्यो है ॥
सुधा के सरोवर सो अंबर उदित ससि,
सुदित मराल मनु पैरिबै को पैँठ्यो है ।
बेलि के विमल फूल फूलत समूल मनौ,
गगन ते उड़ि उड़गन गन बैँठ्यो है ॥

(३६)

कंत बिन बासर वसंत लागे अंतक से,
तीर ऐसे त्रिविध समीर लागे लहकन ।
सान धरे सार से चंदन घनसार लागे,
खेद लागे खरे मृग मेद लागे महकन ॥
फाँसी से फुलेल लागे, गाँसी से गुलाब अरु,
गाज अरगजा लागे, चोवा लागे चहकन ।

(१५९)

अंग अंग आगि ऐसे केसरि के नीर लागे,
धीर लागे जवन अधीर लागे दृष्टन ॥

(३७)

भीतर ही लालनि के आलनि बिनाल जोगि,
बाहर जुन्हाई जगी जोगिन की जोदही ।
चरनति घानी चारि टारति भगानी कर,
जोरे रमा गानी ठाढ़ी रमन के खोदही ॥
उज्जल अखंड खंड मानये महल मझ,
मंदिर प्यारो चंदमंडल की खोदही ।
'देव' दिगपालनि की दयी नुग्रहादि ने,
राधा ठट्टाइन के पाइन पलेदही ॥

(३८)

पीत रंग सारो गोरे अंग मिलि गई 'देव',
भीषल उमंग खाभा खाभाई अगिअ की ।
छूटी खल्लानि दारनि लख बूढ़न की,
बिना देखी दसन दसन मोना दिखी ।
गति मति गति पूरु उरु मरु मरु मरु,
सुखानु सुखानु देखे पानु पानु मरु ।
भीषी बरमाइ नेक नवन नवन होय,
मनिमयी मरुपि मरुपि ने नवन ॥

(१६०)

(३९)

भेदि भुज भुजन समेदि उर सों जु उर,
अधर अधर धरे अधिक अधीर की ।
जोरि अंग अंग सों लचाइ गुलचाइ भाल,
दीनो लाल बेदी बोरि खैचि कै अभीर की ॥
'देव' दुख भंजन लला के दृग खंजन मैं,
अंजन की लीक पीक पलक लकीर की ।
तन मन वारी बनवारी की बनक पर,
चंद बलिहारी बलिहारी बलबीर की ॥

सुखसागर-तरंग

(१)

'देव' सदैव सुखदायक संपत्ति, संपत्ति को सुख दंपति जोरी ।
दंपति दीपति प्रेम प्रतीति, प्रतीति की रीति ननेत निचोरी ॥
प्रीति तहाँ गुण नीति विचार, विचार की यानी तथा रग जोरी ।
दानों को सार ध्यान्यो शृंगार, शृंगार को सार शिरोर किशोरी ॥

(२)

दोही प्रजदृशयन मोही मैं समग नदा,
यमुना तरंग श्याम रग पयसीन की ।
'देव' हई सुंदर नयन यन देविन्दव,
गुंजन में सुनिगत गुंजनि शरीन की ॥
धंसीपट नट नट नागर नयन मोमें,
रान के दिलान की नगुर धुनि दीन की ।
भरि रही भनक बनक गान गानन की,
ननक ननक नामे भनक धुनि की ॥

(३)

पद की शक्ति हई रीन से, ननदेन गि नन दलेनो नने हरि ।
'देव' हरीरति पीर न मोक्ष, दिलोचन पीर सादर सिधे भरी ॥

(१६२)

रुस सकी न भरै सिसकी, सु उमा सनि ही अँसुवाँ सुख पेटरि ।
लालरि लैकै गुलाल रँगिलै, रँगिली की चूनरि गीली गई करि ॥

(४)

एकन बैनन ही ललचाय, लचाये हैं एकन सैनन कै कै ।
है गुलचाय लचाये लला, सु बचाये है ओठनि कै रस लैकै ॥
एकहि भेंटि दुहूँ भुज 'देव', हियो दृग अंजन रंग उन्है कै ।
चंचलनैनी दृगंचल मोरि, हँसै मुख रंचक अंचल दैकै ॥

(५)

खेलत फाग खिलार खरे, अनुराग भरे बड़भाग कन्हाई ।
एक ही भौन में दोउन देखिकै, 'देव' करी इक चातुरताई ॥
लाल गुलाल सो लीनी मुठी भरि, बाल के भाल की ओर चलाई ।
वा दृग मूँदि उतै चितयो, इन भेंटि इतै बृपभान की जाई ॥

(६)

न्याननि काम हौ बाम विरानी ये, जात हिरानी ये सामुहे हेरेई ।
वीरन की सौँ अहोरन पीर न, वीरन के घर आवति घेरेई ॥
औसर होरी के भौज को भेट न, भौजी को भेटन आये अवेरेई ।
देवर हौ जू लड़ाइते देवर, नेवर मेरे सुनेवर मेरेई ॥

(७)

चाँदनी से आँगन विछौना विछो चाँदनी से,
फैलि रही चाँदनी सुहाय 'देव' भूमि भूमि ।
तो ही विनु फीकी ये लगत चलु चन्द्रमुखी,
तेरे हौ चरण चरचत मुख चूमि चूमि ॥

(१६३)

आली देलु आनि कै सुगन्धो धंदोवा गानि,

तामें सुगन्धानि नो धिरह गिरि धूमि धूमि ।

गौनी गौनी गार्ह' नो जुनारि मारी मारनि,

मिलिमिली गालरै रहीं हूँ भुकि भुमि भुमि ॥

(८)

छोर की नो लहरि लहरि गार्ह' निनि गानि,

आमिनि की उद्योनि आमिनी को मनु पेटो हँ ।

छोर छोर छूटत फुहारो मानो मोमिन को,

'देव' घन बासो मन पायो न लगेछो हँ ॥

सुधा को नरोवर नो अन्धर उदित गानि,

सुदित मगल मनो पैरिधे को पैरो हँ ।

पेला के बिजल फूल फूल मगल मगल,

मगल ते उरि उरमगल मन पैरो हँ ॥

(१६४)

(१०)

खरी दुपहरी हरि भरी फरी कुंज मंजु,
गुंज अलि पुंजन की 'देव' हियौ हरि जाति ।
सीरे नद नीर तरु तीरन गहरि छाँह,
सोवै परे पथिक पुकारै पिक करि जाति ॥
ऐसे में किसोरी भोरी कोरी कुँभिलाने मुख,
पंकज जो पाइ धरा धीरज सो धरि जाति ।
सोहै घनश्याम मग हेरति हथेरी ओट,
ऊँचे धाम वाम चढ़ि आवत उतरि जाति ॥

(११)

सोखे सिन्धु सिन्धुर से बन्धुर ज्यौ विन्ध्य गन्ध-
मादन के बन्धु से गरज गुरवानि के ।
भ्रमकारे भ्रूमत गगन घने घूमत,
पुकारे मुख चूमत पपीहा मोरवानि के ॥
नदी नद सागर डगर मिली गये 'देव',
डगर न सूक्त नगर पुरवानि के ।
भारे जल धरणि अँध्यारे धरणी धरणि,
धाराधर धावत धुमारे धुरवानि के ॥

(१२)

आजु गई हुती कुंजन लौं, वरसे उत बूँद घने घन घोरत ।
'देव' कहै हरि भीजत देखि, अचानक आइ गये चित चोरत ॥

(१६५)

पोटि भट्ट तट ओट कटी के, लपेटि पटी मो ष्टी पट्ट दोरन ।
चौगुनो रंग चड़ो चित में, चुनरी के चुवान गला के निबोन्न ॥

(१६)

आली भुलावति भूँकन दै भुक्ति, जानि पटी भननानि मारो ।
पद्मल अद्मल धीच पलायल, येनो धट्टी मगगी भिन सोर ।
या विधि भूलत देगि गगो, तय ते कवि 'देव' मने' के जोर ।
भूलनि टै हियरा हरि को, हिय गाढ़े निगरे हरि के दिलोर ॥

(१७)

भूलत ना यह भूलनि लाल की, इत्थन मान ली गान पटी श्री ।
'देव' कहै लवकै गुप संजल, मोरी रंगवत गान नटी श्री ।
अद्वार की फहरानि लिये, अद्वगनि उवाचन पीन नटी श्री ।
विरिधि की महरानि बुलावति, भूलनि मो भूलि जानि पटी श्री ॥

(१८)

भूलनहारी अनोखी नई, अनई इत ही रह्यो देगना ।
नेह में ल्यार्य पै लीनिय संग श्री, रंग भरी चपरी सुदुख श्री ।
भूला चढ़े हरि साथ हगकन, 'देव' के पार लीने नटी श्री ।
मोर हिलोने की रजिन लालि, मने मनसाद मने मगदा श्री ॥

(१९)

आमपान पूजा हजारा के परान मने ।

एकन अगार छिटि मने है निरन दे ।

पानावार पारद चपार मनी रजि सु ।

'पदु' हलार मगना 'दरि' पद दे ।

(१६६)

शारद जुन्हार्ई जनु पूरण स्वरूप धार्ई,
 धार्ई सुधा सिन्धु नभ शुभ गिरिवर ते ।
 उमड़ो परतु ज्योतमण्डल अखण्ड सुधा-
 मंडल मही में इन्दुमंडल विवर ते ॥

(१७)

दूध सुधा मधु सिन्धु गंभीर ते, हीर जू पै न गंभीर लै आवै ।
 बाले प्रवाल बला मिलि कै, मणि माणिक मोतिन ज्योति जगावै ॥
 तौ रजनीपति बीच विरामिनि, दामिनि दीप समीप दिखावै ।
 जो निज न्यारी उज्यारी करै, तब प्यारी के दन्तन की दुति पावै ॥

(१८)

‘देव’ कन्दर्प के दर्पण द्वै, कि सतापस तर्पन दर्प दुधा के ।
 केलि कला अकुलाउ न चित्त, भुलाउ न मित्त की क्षोभ सुधा के ॥
 गोल कपोल लसै मुख ऊपर, रूप अनूप बलै वसुधा के ।
 जोतिन जूह उदोत दुरूह सुधाधर, मैं कि समूह सुधा के ॥

(१९)

पूरण शारद इन्दु उदार, सुधारस धार सुधारन ती की ।
 स्वास सुवास को सुन्दर मन्दिर, मेड़ अमन्द सुहाग शिरी की ॥
 ऊपर वेंदी तरे लुरकी, इतहूँ उत वीर सुहीरन हू की ।
 वेसरि को मुकुता कलसै, धरि नाक लसै मधिनाप कनी की ॥

(२०)

प्रेम महानद प्यारे के प्रानद, आनँद संपद आपद भंजन ।
 जीय गड़े उमड़े से वड़े वड़े, चंचल नैन मढ़े लघु अंजन ॥

'देव' मनोज सुभाये सरोज पै, गोज के चोज मनो मनरजन ।
 पंचु चुमै पल पंगव उमै पिलि, मेल दूधै निनि रंगन राजन ॥

(२१)

शुं से आनन सुन्दर कानन, हीरन की निधि घोरन गारी ।
 'देव' जगामग ज्योति की लर, मोनित की दुरकीन से नारी ।
 पक्ष दुहैं विकलानि कलानि, पक्ष तम छानि की कानि मगारी ।
 मोने की सीसी भरी सुकुनान, पलानिभि जानि भुजानि से पारी ॥

(२२)

नामिका ऊपर भीटन के मधि, चंदन बिन्दु सुगन्ध से जग ।
 पूर से पंगव पमारि उदयो, सुन ऊर्ध्व मगा निमि मोदन से नग ॥
 'देव' को नैन पलानि दला धियाँ, भाव सुगन्ध के मग मग से नग ।
 नारि दिये त्रिपुरारि घेरे सुनि, हारि से नैन उगारि भरन भग ॥

/ = = \

(१६८)

(२५)

अम्बर नील मिली कबरी, मुकुता लर दामिनि सी दशहूँ दिसि ।
तामधि माथे में हीरा गुह्यो, सु गयो गड़ि केसन की छवि सेां निसि ॥
माँग को मूल उतै सिर फूल, दव्यौ भ्रमकै कनकावलि सेां घिसि ।
भृंग सुमेरु मिलै रवि चंद ज्यौँ, पावस मास अमावस की निसि ॥

(२६)

है अभिमान तजे सनमान, वृथा अभिमान को मान वहैये ।
'देव' दया करै सेवक जानि, सुशील सुहाय सलोनों लहैये ॥
की सुनि के बिनु मोल बिकाय न, बोलन कोइ को मोल न हैये ।
पैये असीस लचैये जो सीस, लची रहिये तब ऊँची कहैये ॥

(२७)

नीके हरयो जु सरीकै सखी, सब गेह की दूसरी देह की हैरी ।
'देव' बनाय मनाय दिखावति, तू इन्हें क्यों न सिखाति ऐरी ॥
बोली उठै विद्धिया जिभ चालये, शोर चुरी चहूँ ओर करै री ।
रंग में भंग करै कटि किंकिणि, अंग के संग लगे सब वैरी ॥

(२८)

सुखसार सिवार सरोवर ते, शशि शीश बँधे विधि के बल सों ।
चकई चक्रवा तजि गंग तरंग, अनंग के जाल परे छल सों ॥
कमलाकर ते कड़ि कानन में, कल हंस कलोलत हैं कल सों ।
चड़ि काम के धाम ध्वजा फहरात, सुमीनन काम कहा जल सों ॥

(१६९)

(२९)

ओठन ते उठि पीठि पै धैठि, कँथान पै धैठि सुरंगी मुन भोगनि ।
 देव फटाइन ते कटि कोप, लिलार चढ़यो धरि भीरु नरोनि ॥
 प्रक में आय मयंकमुखी लट, लाल को बंक भित दमनोरनि ।
 आसुन घूट घो उमान उड़यो किधौ, मान नयो दिली को हिलोरनि ॥

(३०)

हैं जगरी बन जीवन को तजि, जीवन जीवन को निरने को ।
 जीवत को न बिना मज जीवन, जीवनमूरि को दूरि भरे को ॥
 'देव' सुजीवन जीवन नाथ, उदार हैं ता दिन प्यार मरे को ।
 नाद की धाँद बिना गहिरी, गहिरी जल धार के पार परे को ॥

(१७०)

(३३)

नंद घरै वृषभान के भौन ते, जान कह्यौ हरि 'देव' सुहासुनि ।
ताही धरी ते धरी पल लाज, धरी के धरी उधरी बतियाँ सुनि ॥
प्रात अरंभ की खंभ लगी, निरदंभ निरंभ सम्हारै न सासुनि ।
ठाढ़ी बड़े खन की बरसै, बड़री अखियान बड़े बड़े आँसुनि ॥

(३४)

ललित लजीली आइ ललिता विसाखा सौं,
ललित नैन मूँद कर सैनन करत फिरै ।
आये ब्रजचन्द चन्द्रावलि को सुनाये सुनि,
चन्द्रमुखी धाइ प्रीति पाँउड़े धरति फिरै ॥
'देव' ब्रज देवी देवता मनाय मन ही,
मन निछावरि है भाँवरि भरत फिरै ।
गोकुल गुसायन कुँवरि ठकुरायन सौं,
गोपी गोप गायन के पाँयन परति फिरै ॥

(३५)

आँगन बैठी सुनी पिय आवत, चित्त भरोखन में लरक्यो परै ।
घूँघट में घट में पटहू में, समाति न फूलि हियो फरक्यो परै ॥
नैनन ते सुख के आँसुवा मनौं, भौर सरोजन ते सरक्यो परै ।
मंद हँसै दुति दंत लसै मुख, सुंदर दाढ़िम सो दरक्यो परै ॥

(३६)

बैठी ही सुंदरि मंदिर में, पति को पशु पेखि पतिव्रत पोखे ।
तौ लगि आये री आय कह्यौ, दुरि द्वार ते देवर दौरि अनाखे ॥

आनंद ते गुर की गुस्ताऊ, गनी गुन गोदिन दाता कोरे ।
 नुपूर पाइ उठे कलनाय, नु जाय लगी धन धात कोरे ॥

छैन को राखी छिपाय छपा में, छपादन की छदि ॥ छपाय ॥
 'द्वेष जू' गोदिन लाने फिर, यदि है गनि रंग में गनिगज ॥
 पीत पटा पहिरो है भट्ट, वन नीलपटा पवनो पतिगज ॥
 पांगुरी की पति तानन मों, ब्रज की पतिगज भई पतिगज ॥

प्राजु मिले पहने दिन भागते, भेटन भेट नर नर भव ॥
 ये भुज भूपण मों भुज धाति, भुजा भदि पोट नर नर भव ॥
 गीजिए मोहिं उठाय लगी पट, गीजिए न नित्य ली नित्यगज ॥
 प्यारे हमें तुम्हें प्यार पान, नर नर नर नर नर नर ॥

(१७२)

(४१)

वंक विलास निरंकुश हास, सशंक चितौनि चितै चित चैनी ।
घूमि कै बाट बटोही गिरयो, लख भूमि कै भाँकि गई दृग पैनी ॥
चुंद सुधा अरविंद निवारिए, पूरण इंदुमुखी सुखदैनी ।
'देव जू' इंदिरा मंदिर की नव, सुंदरि इंदिरा मंदिर नैनी ॥

(४२)

भूलेहु जो दुचितो चित कीजै, न तौ उचितौ न पतीजै सभागी ।
'देव' दुहूँ कुल को मुख देखि, सुखी रहियेई जऊ दुख दागी ॥
लाज सकोच अकाज सकोचन राज करो जे इन्हें अनुरागी ।
कान सुनी जे न आँखिन देखी, ते कान लगी रहैं आँखिन लागी ॥

(४३)

नीठिहु पीठ दई न लला, अवला के बँधे फिरै डीठि के डोरे ।
तो दिन द्वैक बसे इक कोरे, कछू दुचिती सी करै दृग कोरे ॥
'देव' कहा कहिए तिनकी, गति यों न अजौं लागि जानती भोरे ।
और की चाह न छाह भये, फिरै छाह न छावत नाह निहोरे ॥

कुशलविलास

पनाछरी

(१)

जननी के अलख पर्यङ्क से निराग्र पाव,
‘देव’ का मयङ्क मुख अग्रज पंगार ही ।
भटखी गलीन हू न पटखी शमीन बिर्ग,
पटखी गलीन पंगरीन बिन पोर ही ॥
नन्द जी से नन्दिनी दपोई नन्दनरत्न श्री,
परजो न मानै पर जोई दरदोर ही ।
प्रोचन देव पदन दिनेषन है उधिरा दे,
मोचन है रमान ही उगारै जिन मेर ही ॥

(१७४)

‘देव’ गुरु काज लाज सखिन समाज तजि,
 प्रीतम सों मिलि है सुढार ढरि ढरि कै ॥
 चूमि मृदु वैन नैन पंकज मयङ्कमुखी,
 घूमि घूमि रही बङ्क अङ्क भरि भरि कै ।
 चारि वारि बाल मृगनैनी बाल बालम की,
 विमलि बलैयाँ लै लै पैयाँ भरि भरि कै ॥

(४)

प्रेम को पयोद बीजुरी लै गोद चहूँ कोद,
 वरस विनोद मोद आनन्द मचे परैं ।
 विमलि विहङ्गम जुगुल जैसे सङ्ग सङ्ग
 सरस सुरङ्ग की तरङ्गनि नचे परैं ॥
 अङ्गना के अङ्ग राचे अङ्गराय अङ्ग
 अङ्ग अङ्ग प्यारी के सुरङ्ग हू नचे परैं ।
 ललित लजीली भैं ढीली गर्वीली,
 सकुचीली के सकेचन ही लोचन लचे परैं ॥

(५)

कोकिल लौं कल कूजति कुंजनि, आपुस में मिलि कूजति पायन ।
 लै भुज भेंटति है भरि अङ्क, मयङ्कमुखी सुचि शील सुभायन ॥
 जानै को काँधर कीन्हें कहा, नित नेम लिये चित प्रेम उपायन ।
 ‘देव’ गुविन्द की ओर चितैति, भई सचै सौति सखी मुखदायन ॥

(१७५)

(६)

चरन की दासी सँ उदास कत कीजै चित,
दरस की प्यासी द्वार देहरी ठई रहै ।
दूसरी रँगौली गुन रूप गर्वौली वे,
रसीली ढौली घातनि ही गातन नई रहै ॥
'देव' अनुकूल हँ दुकूलनि घनावै' क्यों न,
दम्पति अटानि पै घटा सी उनई रहै ।
प्राण धन जोवन जीवन उन वारेऊ,
तन मन अर्पनु कै दरपन भई रहै ॥

(७)

लीन्हो मन मूसि मयन राख्योसूम सूसि कौन,
दोष दै के दूस तू सिखापन करत री ।
प्राण धन जीवन हमारे जीवितेश सं,
समीप विनु देखै दीप जोत ज्यों जरति री ॥
नाँह बाँह गहे अपनीचै परधार्ड पै,
औरै तिय लेखि रही भूल ही लरति री ।
'देव' दुख मोचन रंगे ज्यों रङ्ग रोचन,
लला के लखि लोचन सकोचन मरति री ॥

(८)

गर्वौली बुननि लजीली ढौली भाँहनि कै,
ज्यों ज्यों नई जाति त्यों त्यों नये नेह निवई ।

(१७६)

बीधी बात बातनि उनीधी गात गातनि,
 समीधी पर्यङ्क मैं निसङ्क अङ्क हितई ॥
 अँसुवन भीजी बीजी सीजी औ पसीजी,
 मीजी पीजी सो पतीजी राग रंग रैन रितई ।
 नाह नाह सोहैं कै हँसोहैं नेह सोहैं करी,
 क्यों हू नाह सोहैं ना हँसोहैं नैक चितई ॥

(९)

सूधी औ न टेढ़ी रस रोसु हूल वेढ़ी रहो,
 आरस जनावती सुधा रस को पान कै ।
 प्रेम लटपटी उनहू की अटपटी त्यां,
 चाहैं चित चौगुन सराहैं गुन गान कै ॥
 'देव जू' दुहूँ को दुहूँ पायो है सुभाव हम,
 भूठे बोलि भाखै कौ लौ राखै समाधान कै ।
 माननी अनाखी मान ही सौं घुरी जाती कहाँ,
 कैसे मरी जाती मरी जाती नैक मानकै ॥

(१०)

औड़ी चितौनि कहूँ उड़ि लागति, वन्दनि आड़ जो आड़ै न होती ।
 डारतो गूँदि गुमान गयन्दु, जौ गोल कपोल में गाड़ न होती ॥
 रुठती लोक लटैं सुफुजेल, हमेल हिये भुज हाड़ न होती ।
 इन्दु अचानक च्यै पड़तो, मुखचन्द चितैं जु पै चाड़ न होती ॥

(११)

रहैं भराई न राई भरी, कोई भौहैं चढ़ाय चितैहैं सरोसैं ।
 वृष्णि समो ब्रज लाड़ली सों, हरि वोम्ब की बात कहौ निरजोसैं ॥
 'देव' कहा भयो जो कवहूँ, भुजि मेल कहूँ उनके गल गोसैं ।
 देखौं कहूँ दुरि दूरि भये, अब वे नहिं वे जिनके हैं भरोसैं ॥

(१२)

सापने की सौतुक औ सोवत की जागत ही,
 जानि न परति रोम रोम ररकत री ।
 बद्ध दृग बदन मयद्ध वारे अद्ध भरि,
 अद्ध ए ससद्ध पर्यद्ध धरकत री ॥
 'देव' गति गूढ़ ढिग हूँ दत्त न पायो दिन,
 मृग ज्यों मृगी के दृग आँसू ढरकत री ।
 याही छिन छोभ भरी छितियाँ विछोह वाके,
 कर धरि देखु तू करेजे करकत री ॥

(१३)

भाग भरे आनन अनूप दाग शीतला के,
 'देव' अनुराग भौंभरी से गमकत हैं ।
 उड़िके निगोड़ी दीठि गड़ि गाड़ि गाड़ें परी,
 उमड़ि उमड़ि आड़ें लोग लमकत हैं ॥
 जोवन किसान मुख खेत रूप बीज धीजे,
 चारु सुधा चुन्दनि अमन्द दमकत हैं ।

(१७८)

चदन के वेभे पै मदन कमनैती के,
घुटारे सर चोटनि चटा से चमकत हैं ॥

(१४)

पानी की पठौन हारि निपट कठिन नारि,
देउँ कहा गारि तोही राखती सिंगारि कै ।
ए री पनिहारी 'देव' तेरी मनुहारि करौं,
नेक ही निहारि हरि गयो हिय हारि कै ॥
पनघट पारि लौं क्यों आई बटपारि सुख-
मारि जे सलोनी दारौ तापै सब वारि कै ।
हूँ घट सम्हारि अब हूँ घटि सम्हारति न,
तू घट सम्हारि कु घूँघुट सँभारि कै ॥

(१५)

तरुनी तरलनयनी वरुणीतिमिर,
अरुनाधर मधुर दुत दूनी दुज भूप सौं ।
उदित अनङ्ग रावि रङ्ग रँगमगी कवि,
'देव' जगमगी नौ जोवन अनूप सौं ॥
ऊचे कुच गिरि ते गिरो फिर न फिर्यौ तीर,
तिवली तरङ्गनि गही नाभि कूप सौं ।
लै गई भुजनि भानि उरजि मजेज माँज,
अंजन सो आँजि मनु राँजि रुचि रूप सौं ॥

(१७९)

(१६)

जिनके अनूप रूप सिन्धु ब्रज गोरिन के,
लाज के जहाज गुनि गहे गहिरात है ।
भये सुर लीन सुनि मुरली सुरनि धुनि,
धुनि धुनि सीस मुनि ईस न थिरात है ॥
तेई सन्मुख मुख सोहै है हँसोहै रस.
लालच ही लाल चित लुर लुर जात है ।
'देव' दुखमोचन सलोनी मृगलोचनि,
तो देखि देखो लोचन लला के ललचात है ॥

(१७)

कैसो किसोरी को केसरि सो तनु, केस बड़े बड़े नीर निचोवै ।
हाँसी सुधा सी सुधानिधि सो मुख, माँग के मोतिन मैल मिलोवै ॥
कान अहो धरि राखौ न होय, हने हू नखौ जो सुने सुख खोवै ।
रांधे सी रूप उजागरि नागरि, सो गुन आगरि गागरि दोवै ॥

(१८)

काढ़ि पियूख पियूख मयूख, मिलै मदिरा चिन्नु वोइ नदी में ।
'देव' गऊ सुर-रूख धनन्तरि, साहस सद्गहि न्योतिन ही में ॥
रानी रमा गहि आनि जपै, सुर हैं गज रम्भ कहौ किन ही में ।
छैल छिपे रहौ छील समुद्र, न द्वार समुद्र करो छिन ही में ॥

(१९)

प्रेम पियूख पियो मुख जो, सुख मानि है तौ विष को अभिलाखिन ।
'देव' वियोग के भोग भरी, सुबृथा अथ जोग कथा कह्यु भाखिन ॥

(१८०)

जो निकरे ब्रज ते तौ कहा, हरि पै हिरदै ते कढ़े कहूँ ना खिन ।
आँखिन ओट करैं जनि राखि, करेजिन छेद करे जिन आँखिन ॥

(२०)

कठिन कुठाठ काठ कुंठित कुठार कूठ,
रूठी हठ कोठरी कपाट कपटन की ।
चीकनी सोहाग नेह हमकी सराग पर,
प्रेम पाँच परत न राह रपटन की ॥
बर तनु वरत उबारिण लुरव बारि,
वारिण न विरह दवारि भपटन की ।
'देव जू' विदेह दाह देह दहकत आवै,
आँच लपटनि ओत आँच लपटन की ॥

(२१)

वानँ दगाँव को साँवरो सो कलु, नीको सुनाऊँ सुन्यो मैं नितै ही ।
'देव' कहा कहूँ देखत ही वनै, देखौँ तितै तितै जात जितै ही ॥
आजु अभैही इहाँ ही हौँ भौर ते, देखौरी दूरि दुरयो है कितै ही ।
चंचल दीठ में ढीठ चुभै, चित चोरि लियो चितचोर चितै ही ॥

(२२)

आलि अहे मृग-बाल-विलोचनि, मो दुख मोचन रूप तिहारो ।
सुन्दरि चन्द्रमुखी प्रियवादिनी, बोलती बोल सो प्राण ते प्यारो ॥
मो मव भाँति भटै हँ भट्ट, मखियान करो आँखियान को तारो ।
वा नँ दगाँव में साँवरो मोजू, तिहारी उन्हारि हितू हैं हमारो ॥

(१८१)

(२३)

जोवन भानु नहीं उदयो ससि, सय सबहू को प्रकास न ऊनो ।
ज्यों हरदी पहरि पियराई, जुन्हाई को रूप भयो मिलि धूनो ॥
'देव' रचो अँग अङ्गनि रङ्ग, बढ्यो सु सयानु अयानु न लूनो ।
वैस बराबरि दोऊ सुहात, सु गोरी कु गातु प्रभात सो पूनो ॥

(२४)

सोन सरोज कलीन के खोज, उरोजनि को उर रोज निहारो ।
'देव जू' वाढ़त ओप घरी पल, त्यों ही नितम्ब भयो कछु भारो ॥
कानन की ढिग है दग दौरति, चातुरी चाऊ चबाव पसारो ।
दाव्यो दुहूनि दुहूँ दिसि ते, सुभयो दधि दूधरो लङ्क विचारो ॥

(२५)

पी के सनेह सखी के प्रपञ्च, पची पहिले पति प्रीत धुरी सी ।
दूसरी देव तनीनु जनी, रजनी रस की सजनी निटुरी सी ॥
भाग भरी अनुराग सुहाग की, लाग लगी लरिकाई लुरी सी ।
लाज में प्रेम पगी बतियाँ, लगी सौतनि की छतियान छुरी सी ॥

(२६)

प्यारे के प्यार सों पड़े सुहाग, सो न्यारे भये नित नेह निहोरिए ।
जा सुख सङ्ग को अङ्ग सिंगारिये, तासों बिगारिये क्यों विष बोरिए ॥
जासों बँधो धन जोवन जीवन, 'देव' तहाँ चित दै हित जोरिए ।
तेरेई गोहन लाग्यो फिरै, मनमोहन सो भरो भाँह न मोरिए ॥

(१८२)

(२७)

वाजी बलै रसना रसनाद सुनूपुर, भोग की भूपर मारै ।
ओज के तान मनोज के मान सों, ओज के गान गरे अनुसारै ॥
लाज लुटी छिन एक छुटी लट, 'देव' कटाक्ष कुटीर के द्वारे ।
प्रेम पुटी पटी जोग जुटी, सुनटी सुनटी भ्रुकुटी के अखारे ॥

(२८)

तिल तिल रूप की तिलोत्तमा न तूल जाके,
अति ही अतूलनि की बनी ही कुँवारी सी ।
परिमल मूलनि दुकूलनि में मिल रही,
फूलनि बसाई फूलि फूली फुलवारी सी ॥
हेमैत हसन्ती सी वसन्तमय वसन्ती रितु,
ग्रीष्म की ऊखम पियूख सुखकारी सी ।
'देव' कामदेव दुख दुसह दवागिन की,
आँच लगे हिय में हिमंचल बयारी सी ॥

(२९)

संकेत सदन 'देव' मदन विलास विधु-
वदनी वदन दोऊ दुहुनि भरे गोदनि ।
त्रिविध समीरन चकोर भौर-भीर में,
क्षीरनिधि वीक्षित में छाई छित छिरोदनि ॥
केतकी रजनि अरगजनि मधुर मधु,
राका की रजनि राजें रंजित चहुँ कुदनि ।

(१८३)

वृन्दावन बीच मृदु मन्दार विनोद मोद,
मन्दिर वसायो मृग मेदनी के आमोदनि ॥

(३०)

फूलन की सेज पै दुकूलनि सँभारति न,
खुले भुजमूलनि लता से लहराइयत ।
विथुरी न जानै पिकवैनी बड़ी बेनी दूटि,
हारन ते छूटि छित मोती छहराइयत ॥
पीयूख मयूख मुख पीयूख निचोरि कै,
सुगन्ध वारि वोरि पटु पौन फहराइयत ।
श्रम के हरन सुखदेनी के सुख करन,
सखी कर चरन सरोज सहराइयत ॥

(३१)

चढ़ि कै कदम्ब पै दिगम्बर पै अम्बर ठ,
उजारें हरि लीने हरि हरि कै ।
घार न लगाई नांगी वारि ते निकसि देख,
वरु वरियाई वरियाई वरि वरि कै ॥
मै न बलवीर बलवीरी की सौं देखैं गैल,
गैल ऐल पारी मेरी गैल परि परि कै ।
हारी कर जोरि वरजौं री काहि काहि ब्रज,
धैरी धैर परधो चरजोरी करि करि कै ॥

(१८४)

(३२)

बद्ध विलास निरंकुस हास, ससङ्क चितौनि चितै चित चैनी ।
 घूमि के वाट बटोही गिर थो, लखि भूमि के म्हाँक गई दृग पैनी ॥
 बुन्द सुधा अरि विन्दु निवारिए, पूरन इन्दुमुखी सुख दैनी ।
 'देव जू' इन्दिरा मन्दिर की, नौ सुन्दरी इन्दिरा मन्दिर नैनी ॥

(३३)

सखी काल की छोहरी छैल भई, छिपि गैल हैं जानति जात जहाँ तू ।
 कौन भुलाई दुलाई तैं दीठ तैं, पीठ चली तज ईठ तहाँ तू ॥
 हाँ कवि की बकवाद बकी थकि, 'देव जू' बोलत नाहीं न हाँ तू ।
 वातनि देव वितौति तू सौति, अजौं बिख वौति चितौति कहाँ तू ॥

(३४)

राधे की गुपित प्रेम रस सों रसाने कान्ह,
 आये बरसाने ग्वाल बालनि विसारि कै ।
 बाँसुरी बजाई गाइ बिरह जगाय,
 ललिता सों लौ लगाय लङ्गर विचारि कै ॥
 सोई मुनि मुनि धुनि सीस धुनि धाई उर,
 आनँद बधाई गुरजननि सों रारि कै ।
 आँसू दृग टारिकै विदारिकै सखीन आई,
 नेह सो निहारि 'देव' तनु मनु वारि कै ॥

(३५)

धीतो परै नहीं चीतो चवाइनी, देग्वत पीठ दै दीठि कै पैनी ।
 चाँके चितै चितवै चहुँ ओर, चलाचल चंचल चित्त अचैनी ॥

(१८५)

चाहत 'देव' दुरै दुलही, सुखदानि को आनि मिल्यो सुखदैनौ ।
भूलि परी मृग को मरु चाहि, भई मृगया को मृगी मृगनैनी ॥

(३६)

सखि क्यों अकुलाई दुलाई कै धीरजु, वैठी भुलाई कला रस केली की ।
पौरि लौं दौरि पढ़ाई सुवाइन, आँसुन लीलति धील सहेली की ॥
'देव' इतै बलि लेन चले अलि, चाँचर आँचरि वेलि नवेली की ।
पौरु अगोनू पठाये सँदेश, दैलाल को आवनु माल चमेली की ॥

(३७)

चारन देतं किवार अवारहू, तोसों में वार हजार कही री ।
फूल बिथोरे दुकूलनि छोरि लै, भावत मोहिं बयार न सीरी ॥
'देव' कहाँ लौं गिनौ उनके गुन, सोसु धुनो न सुनौ धुन ए री ।
दारि दे मौंधे बिदारि दे लौंड़ीहौ, गारि दै बेलो बिगारि दै बीरी ॥

(३८)

वैरिनि जीभहिं तीभ दै री, मन वैरी कौ मीज कै मौन धरौगी ।
जानै को 'देव' कहा भयो मोहिं, लरी कहैं लोग कहा लौं मरौगी ॥
प्राणपती सुख सर्वस वे, उनसों गुन रूप को गवँ करौगी ।
अंजलि जोरि निहोरि गरे परि, औ हरि प्यारे के पाँव परौगी ॥

(३९)

चैतु चितै दिन चारिक फूली, लता भरि मूरी निमूली सी हेरे ।
भौर भरोमे भिरैं सबही सों, धिरैं सब हीं के धिरैं नहिं घेरे ॥
'देव' अहो बलि हैं बलिहारी, तिहारी सी प्रीति निहारी न नेरे ।
दाह बुझाई सुझाई दिव्याई, सुहाई भली समुझाई सवेरे ॥

स्फुट कविता

(१)

पाँयन नूपुर मंजु वज्रै, कटि किकिनि मैं धुनि की मधुराई ।
साँवरे अंग लसै पट पीत, हिये हुलसै वनमाल सुहाई ॥
माथे किरीट बड़े दृग चंचल, मन्द हँसी मुख चंद जुन्हाई ।
जै जग मंदिर दीपक सुंदर, श्री वृज दूलह 'देव' सहाई ॥

(२)

गंग तरंगनि बीच वरंगनि, ठाढ़ी करै जपु रूप उदोती ।
'देव' दिवाकर की किरनै, निकसै विकसै मुख पंकज जोती ॥
नीर भरी निचुरै अलकै, छुटि कै छलकै मनो माँग के मोती ।
विज्जुलि से झलकै लपटे कन, कज्जल से अँग उज्जल धोती ॥

(३)

अनुराग के रंगनि रूप तरंगनि, अंगनि ओप मनो उफनी ।
'कवि देव' हिये सियरानी सबै, सियरानी को देखि मुहागसनी ॥
वर धामन वाम चढ़ी वरसै, मुमुकानि मुधा घनसार घनी ।
सखियानि के आनन-इंदुन ते, अँगियानि की बंदनवार तनी ॥

(४)

न्यास के संग मदा हम डोलै, जहाँ पिक बोलै अलीगन गुंजै ।
लाहनि माह उद्गाहनि मो, छहरै जहँ पीरी पराग की पुंजै ॥

(१८७)

बोलनि मैं रस केलिन मैं, 'कवि देव' कछू चित की गति लुंजै ।
कालिंदी-कूल महा अनुकूल ते, फूलती मंजुल वंजुल कुंजै ॥

(५)

सँजोगिन की तू हरै उर पीर, वियोगिन के सचरे उर पीर ।
कलीन खिलाइ करै मधु पान, गलीन भरै मधुपान की भीर ॥
नचै मिलि बेलि बधूनि अचै, सुर 'देव' नचावति आधि अधीर ।
तिहू गुन देखिए दोष भरो, अरे सीतल मंद सुगंध समीर ॥

(६)

कातिक पून्यो की राति ससी, दिसि पूरव अंबर में जिय जान्यो ।
चित्त भ्रन्यो पुमनिंदु मनिंदु, उठ्यो भ्रम ही सो भुलान्यो ॥
'देव' कछू बिसवास नहीं, सोई पुंज प्रकास अकास में तान्यो ।
रूप-सुधा अँखियानि अँचै, निहचै मुख राधिका को पहिचान्यो ॥

(७)

सुनि कै धुनि चातक मोरनि की, चहुँ ओरनि कोकिल कूँनि सों ।
अनुराग भरे हरि वागनि मैं, सखि रागत राग अचूकनि सों ॥
कवि 'देव' घटा उनई जु नई, वनभूमि भई दल दूकनि सों ।
रँगराती हरी हहराती लता, झुकि जाती समीर के झूकनि सों ॥

(८)

आली झुलावति झूँकनि सों, झुकि जात कटी मननाति नकोरे ।
चंचल अंचल की चपला, चलयेनी बड़ी सो गड़ी चित चोरे ॥
या विधि भूलत देखि गयो, तब ते कवि 'देव' सनेह के जेरे ।
भूलत है हियरा हरि को, हिय माहिँ तिहारे दूरा के हिँदोरे ॥

(१८८)

(९)

आई वसंत लग्यो वर सावन, नैनन ते सरिता उमहै री ।
को लागि जीव छमावै छपा, मै छपाकर की छवि छाई रहै री ॥
चंदन सों छिरके छतिया, अति आगि उठे उर कौन सहै री ।
सीतल मंद सुगंध समीर, वहै दिन दूगुन देह दहै री ॥

(१०)

फूले अनारनि पाँडर डारनि, देखत 'देव' महाडरु माँचै ।
माधुरी भौरनि अंब के वारनि भौरनि के गन मंत्र से वाँचै ॥
लागि उड़ै विहागिनि की कचनारनि बीच अचानक आँचै ।
माँचै हुँकारि पुकारि पिकी कहै नाच वनैगी वसंत की पाँचै ॥

(११)

लोग लुगाइन होरी लगाई, मिलामिली चारु न भेटत ही बन्यौ ।
'देवजू' चंदन चूर कपूर, लिलारनि लै लै लपेटत ही बन्यौ ॥
वै त्यहि औसर आये इतै, समुहाई हियो न समेटत ही बन्यौ ।
लीनी अनाकिनि मै मुख मोरि, पै जोरि भुजा भट्ट भेटत ही बन्यौ ॥

(१२)

गधिका सी सुर मिद्ध सुता, नर नाग सुता 'कवि देव' न भू पर ।
चंद करी मुख देखि निछावरि, केहरि कोटि लटो कटि हू पर ॥
काम कमान हूँ को भृकुटीन पै, मीन मृगीनहूँ को दृग दू पर ।
बारी री कंचन-कंज-कली, पिकवैनी के ओछे उरोजन ऊपर ॥

(१८९)

(१३)

खंजन मीन मृगीन की छीनी, दृगंचल चंचलता निमिखा की ।
 'देव' मयंक के अंक की पंक, निसंक लै कज्जल लोक लिखा की ॥
 कान्ह वसी अँखियान विपे, विसफूरति बीस विसे विसिखा की ।
 दीपति मैत-महीप लिखाई, समीप सिखा गहि दीप-सिखा की ॥

(१४)

कोयन ज्योति चहूँ चपला, सुर-चाप सुभू रुचि कज्जल कादौ ।
 बुंद बड़े वरसै अँसुआ, हिरदै न वसै निरदै पति जादौ ॥
 'देव' समीर नहीं दुनिए, धुनिए सुनिए कलकंठ निनादौ ।
 तारे खुले न घिरी वरुनी, घन नैत भये दोउ सावन भादौ ॥

(१५)

धार में धाई धँसी निरधार है, जाय फँसी उकसी न आवेरी ।
 री अँगिराई गिरी गहिरी, गहि फेरे फिरी न घिरी नहि घेरी ॥
 'देव' कछू अपनो वसु ना, रसु लालच लाल चितै भई चेरी ।
 वेगि ही बूढ़ि गई पँखियाँ, अँखियाँ मधु की मखियाँ भई मेरी ॥

(१६)

काननि कोननि कूदि फिरें, करि सौतिन के घर खेन की नूँदनि ।
 'देव' जू दौरि मिले ठगि ज्यों, मृग जे न फँदे फँदवार के फूँदनि ॥
 घूँघट के घट की नटकी, नु छुटी लटकी लट की गुन गूँदनि ।
 केहू कहूँ न छुरै बिछुरै, बिचरै न चुरै निचुरै जल वूँदनि ॥

(१९०)

(१७)

पूरन प्रेम सुधा वसुधा, वसु धार भई वसुधार सुरेखी ।
जीवन या वृज जीवन की, वृज जीवन जीवन मूरि विसेखी ॥
तू परमावधि रूप रमा, परमानंद को परमानंद पेखी ।
नेह भरी नख ते सिख 'देव', सुदेह धरे ससि-मूरति देखी ॥

(१८)

सोधि सुधारि सुधा धरि 'देव', रची नख ते सिख सुद्ध ससी सी ।
सोने मे रंग सलोने-से अंगन, कौने न नैन कसौटी कसी सी ॥
ही के बुझें सब ही के सताय सु, सौतिन को असराप असी सी ।
भावती हौ हित ही की हितू भई, आवती हौँ अँखियानि बसी सी ॥

(१९)

अंबर नील मिली कवरी, मुकुता-लर दामिनि-सी दसहूँ दिसि ।
ता मधि माथे में छीरा गुह्यो, सु गयो गढ़ि केसन की छवि सों लिसि ॥
मांग के मूलवने सिर फूल, दृव्यो कमकें कनकावलि सों घिसि ।
शृंग मुमेरु मिले रवि-चंद ज्यों, पावस मास अमावस की निसि ॥

(२०)

आँधी चितौनि कहूँ उड़ि लागती, बंदन आड़े जो आड़ न होती ।
टारती गूँदि गुमान गयंदु जो, गोल कपोलनि गाढ़ न होती ॥
तूटती लोलु लटें मफुल्लेल, हमेल हिये भुज टाढ़ न होती ।
चंदु अचानक च्यै परनो, सुखचंदु पै जो चित चाढ़ न होती ॥

(१९१)

(२१)

ईंगुर सो रँग एँड़िन बीच, भरी अँगुरी अति कोमलतायनि ।
चंदन-विन्दु मनौ दमकै, नख 'देव' चुनौ चमकै ज्यों सुभायनि ॥
वंदत नन्दकुमार तिहारेई, राधे वधू ब्रज की ठकुरायनि ।
नूपुर-संजुत मंजु मनोहर, जावक-रंजित कंज से पायनि ॥

(२२)

प्यारी सकेत सिधारी सखी सँग, स्याम के काम सँदेसनि के मुख ।
सूनौ इतै रँगभौन चितै चित, मौन रही जकि चौकि चहूँ रुख ।
एक ही बार रही जकि ज्यों, त्यों भौंहनि तानि कै मानि महा दुख ॥
'देव' कछु रद बीरी दै बीरी, सु हाथ की हाथ रही मुख की मुख ॥

(२३)

पहिले सुनि राख्यौ हो भाख्यो सखी, रस चाख्यो अचानक कान पुटी ।
लखि चित्र-चरित्रलख्यो सपने, अब तौ खिनआखिन आँख जुटी ॥
उमग्यो मनु 'देव' लग्यो पनु सो, गुरु बंधुनि की धन-रासि लुटी ।
कुल-कानि की गाँठि तें छूट्यो हियो, हिय ते कुल-कानि की गाँठि छुटी ॥

(२४)

आँखिन आँख लगाये रहै, सुनि धुनि कानन की सुखकारी ।
'देव' रही हिय में घरु कै, न रुकै निसरै बिसरै न बिनारी ॥
फूल में वासु ज्यों मूल सुवासु की, हैं फल फूलि रही फुलवारी ।
प्यारी उज्यारी हिये भरि पूरि है, दूरि न जीवन-मूरि हमारी ॥

(१९२)

(२४)

जेठी वड़ी ते अमेठी सी भौहनि रुद्ध, महा मन सूद्धम सीछैं ।
 'देव जू' वातनि ही सौं हितौति, सी, सौति सखी सुचितौति तिरीछैं ॥
 लाज की आंचन या चित राच न, नाच नचाई हैं नेह न छीछैं ।
 चाह भई फिरौं या चित मेरे कि, छाँह भई फिरौं नाह के पीछैं ॥

(२५)

पीछे तिरीछे कटाच्छन सों, इत वै चितवै' री लला ललचोहैं ।
 चौगुनौ चाउ चत्रायनि के चित, चाह चढ़े हैं चवाउ मचोहैं ॥
 जोवन आयो न पाप लग्यो, कवि 'देव' रहें गुरु लोग रिसोहैं ।
 जी में लजैए जु जैए कहूँ, तित पैये कलंक चितैए जु सोहैं ॥

(२६)

पीर सही घर ही में रही कवि 'देव' दियो नहि दूतिन को दुख ।
 काहु की बात कही न सुनी, मनु मारि बिसारि दियो सिंगरो सुख ॥
 भीर में भूलि कहूँ सखि में, जय ते ब्रजराज की ओर कियो मग्न ।
 सोहि भट्ट तव ते निमिन्दौम, चितौन ही जान चवाइन के गुन ॥

(२७)

बाहू की कोटि कटावति हैं नहि, जाति न पाँति न जाते स्वर्मांगी ।
 मंगिये दाम करौ किन लोग हैं, को कवि 'देव जू' काहि हँमांगी ॥
 गोदुल चन्द की चोरी चकोरी हैं, मंद हँसी मृदु फंद फँसांगी ।
 मेरी न घान बहौ बलि कोटि, हैं बावरी हैं ब्रज-श्रीच बर्मांगी ॥

(१९३)

(२८)

जागत जागत खीन भई, अब लागत संग सखीन को भारो ।
खेलिवोऊ हँसिवोऊ कहा सुख सों वसिवो विसे बीस विसारो ॥
तौ सुधि दौस गँवावति 'देव जू', जामिनि जाय मनौ जुग चारो ।
नीरज नैन निहारिए नैनन, धीरज राखत ध्यान तिहारो ॥

(२९)

पहिले सतराय रिसाय सखी, यदुराय पै पाय गहाइए तौ ।
फिरि भेंटि भट्ट भरि अंक निसंक, बड़े खिन लौं उर लाइए तौ ॥
अपनो दुख औरन कौ उपहास, सवै कवि 'देव' बताइए तौ ।
घनस्यामहि नेकहुँ एक घरी को, इहाँ लगी जो करि पाइए तौ ॥

(३०)

सुखसार सिवार सरोवर ते, ससि सीस बँधे विधि के बल सों ।
चकई चकवा तजि गंग तरंग, अनंग के जाल परे छल सों ॥
कमला करके कढ़ि कानन में, कल हंस कलोलत हैं कल सों ।
चढ़ि काम के धाम स्वजा फहरात, सुमीनन काम कहाँ जल सों ॥

(३१)

अरिकै वह आज अकेले गई, खरिकै हरिकै गुन रूप लुही ।
सनहू अपनो पहिराय हरा, मुसक्याय कै गाय कै गाय दुही ॥
कवि 'देव' कहौ किन कोई कछु, तब ते उनके अनुराग छुही ।
सब ही सों यहै कहै बाल-बधू, यह देखु री माल गोपाल गुही ॥

(१९२)

(२४)

जेठी बड़ी ते अमेठी सी भौहनि रुद्ध, महा मन सूछम सीछैं ।
'देव जू' वातनि ही सौं हितौति, सी, सौति सखी सुचितौति तिरीछैं ॥
लाज की आंचन या चित राच न, नाच नचाई हौं नेह न छीछैं ।
चाह भई फिरौं या चित मेरे कि, छाँह भई फिरौं नाह के पीछैं ॥

(२५)

पीछे तिरीछे कटाच्छन सों, इत वै चितवै' री लला ललचेहैं ।
चौगुनौ चाउ चत्रायनि के चित, चाह चढे हैं चयाउ मचेहैं ॥
जोवन आयो न पाप लग्यो, कवि 'देव' रहें गुरु लोग रिसौहैं ।
जी में लजैए जु जैए कहूँ, तित पैये कलंक चितैए जु सोहैं ॥

(२६)

पीर सही घर ही में रही कवि 'देव' दियो नहिं दूतिन को दुख ।
काहू की बात कही न सुनी, मनु मारि बिसारि दियो सिंगरो सुख ॥
भीर में भूलि कहूँ सखि में, जब ते ब्रजराज की ओर कियो रुख ।
मोहिं भट्ट तब ते निमि-दौस, चितौन ही जात चवाइन के मुख ॥

(२७)

काहू की कोई कहावनि हौं नहिं, जाति न पाँति न जाते ग्यसांगी ।
नेरिये दाम करौ किन लोग हौं, को कवि 'देव जू' काहि हँसांगी ॥
गोदुल नन्द की चरी बकरी हौं, मंद हँसी मृदु फंद फेसांगी ।
मेरी न मान बड़ी बलि केहि, हौं बावरी हँ ब्रज-धीच बसांगी ॥

(१९३)

(२८)

जागत जागत खीन भई, अब लागत संग सखीन को भारो ।
खेलिबोऊ हँसिबोऊ कहा सुख सों बसिबो विसे बीस विसारो ॥
तौ सुधि दौस गँवावति 'देव जू', जामिनि जाय मनौ जुग चारो ।
नीरज नैन निहारिए नैनन, धीरज राखत ध्यान तिहारो ॥

(२९)

पहिले सतराय रिसाय सखी, यदुराय पै पाय गहाइए तौ ।
फिरि भेंटि भट्ट भरि अंक निसंक, बड़े खिन लौं उर लाइए तौ ॥
अपनो दुख औरन को उपहास, सबै काव 'देव' बताइए तौ ।
घनस्यामहि नेकहुँ एक घरी को, इहाँ लगि जो करि पाइए तौ ॥

(३०)

सुखसार सिवार सरोवर ते, ससि सीस बँधे विधि के बल सों ।
चकई चकवा तजि गंग तरंग, अनंग के जाल परे छल सों ॥
कमला करके कढ़ि कानन में, कल हंस कलोलत हैं कल सों ।
बढ़ि काम के धाम ब्रज फहरात, सुमीनन काम कहाँ जल सों ॥

(३१)

अरिकै वह आज अकेले गई, खरिकै हरिकै गुन रूप लुही ।
उनहूँ अपनो पहिराय हरा, मुसक्याय कै गाय कै गाय दुही ॥
कवि 'देव' कहौ किन कोई कछू, तब ते उनके अनुराग लुही ।
सब ही सों यहै कहै वाल-बधू, यह देखु री माल गोपाल गुही ॥

(१९४)

(३२)

आँखिमिहीचनि खेलत मोहिं, दुहूँ बिधि सोव कहूँ नटि जाइ न ।
चोर हूँ सोर कै नन्दकिसोर री, जाइ छिपै पै कहूँ सटि जाइ न ॥
नैन मिहीचौ जु पै उनके, तजि लाज सनेह कहूँ हटि जाइ न ।
नाथ हा ! हाथ सरोज से गेरे, करेरे कटाच्छ कहूँ कटि जाय न ॥

(३३)

गोत-गुमान उतै इत प्रीति, सुचादरि सी आँखियान पै खैंची ।
टूटै न कानि दुहूँ दुखदानि, की 'देवजू' हाँ दुहुँ ओर ते ऐंची ॥
सील लटो न हियो पलटो, प्रगटी सु निरंतर अंतर कैंची ।
या मन मेरे अनेरं दलाल है, हाँ नँदलाल के हाथ लौ वैंची ॥

(३४)

जीभ कुजाति न नेकु लजाति, गनै कुल-जाति न बात कएो करै ।
'देव' नयो हिय नेह लगाय, बिदेह की आँचन देह दएो करै ॥
जीव अजान न जानत जान, जो मैंन अयान कं ध्यान रएो करै ।
काहे को मेरो कदावत मेरो जु, पै मन मेरो न मेरो कएो करै ॥

(३५)

आँठ नही नन में तरुनाई, भई नहि स्याम के संग मँयोगिनि ।
कौन मिग्याई धौ मीन्य कहा, मुमिरं धरि ध्यान मनो युग योगिनि ॥
भोजन वाग न दाम बिलास, उमाम भरै मनो दीन्य रोगिनि ।
आँगिन ने अमुआ नहि मृग्यन, एकदं बार है पैठी वियोगिनि ।

(१९५)

(३६)

घोर लगै घर बाहिर हूँ उर, नूतन नूत दवागि जरे से ।
रंगित भीतिन भीति लगै, लखि रंग मही रन रंग ढरे से ॥
धूम घटागर धूपन की, निकसैं नव जालन व्याल भरे से ।
जे गिरि-कन्दर-से मन-मन्दिर, आज अहो उजरे उजरे से ॥

(३७)

पून्यो प्रकास उदो उकसाइ कै, आस हूँ पास वसाइ अमावस ।
दै गये चित्त मैं सोच-विचार, सु लै गये नींद छुवा बल बावस ॥
है उत 'देव' वसंत सदा, इत है उत है हिय कंप महावस ।
दै सिसिरो निसि श्रीपम के, दिन आखिन राखि गये रितु पावस ॥

(३८)

ना यह नन्द को मंदिर है, वृषभान को भौन कहा जकती हौ ।
हौ ही कि हौ तुम ही कवि 'देव जु', काहि धौ घूँ घट कै तकती हौ ॥
भेटती मोहि भट्ट केहि कारन, कौन की धौ छवि सो छकती हौ ।
कैसे भई हौ कहौ किन कैसे हूँ, कान्ह कहाँ हैं कहाँ बकती हौ ॥

(३९)

'देव' जु पै चित चाहिए नाह, तौ देह निवाहिए देह मरयो परै ।
त्यो ससुम्माय ससुम्माइए राह, अमारग जो पग धोखे धरयो परै ॥
नीके में फीके है आंसू भरौ, कत ऊँची उसास गरौ क्यो भरयो परै ।
रावरो रूप पियो अखियान, भरयो सुभरयो उवरयो मुडरयो परै ॥

(१९६)

(४०)

पूतना को पय पान करो मनु, पूत-नाते विमवाम वगाहत ।
 'देव' कहा कहीं मातु-पिता-हित-बन्धुन सों हितु नीके निवाहत ॥
 कारे हौ कान्ह निकारे हौ कीलि, रहे गुन लीलि पै औगुन धाहत ।
 पन्नग की मनि कीन्हे तुम्हें, तुम पन्नग की किचुलीं कियो चाहत ॥

(४१)

रावरे पाँवन ओट लसै, पग गूजरी वार महावर ढारे ।
 नारी असावरी की फलकै, छलकै छवि घाँघरे घूम घुमारे ॥
 आओ जु आओ दुराओ न मोहू, सु 'देव जू' चन्द दुरै न अँधारे ।
 देगौ हौ कौन सी छैल छिपाई, तिरीछ हँसै वह पीछे तिछारे ॥

(४२)

बैठी कहा धरि मौन भट्ट, रँगभौन तुम्हें विन लागत मूनौ ।
 चातक लौ तुम ही ररि 'देव', चकोर भयो चिनगी करि चूनौ ॥
 नाँक मृदाग की माक उदौ, करि माँनि सरोजन को वन लूनौ ।
 पायस ते उठि कीजिए चैन, अमावस ते उठि कीजिए पूनौ ॥

(४३)

जोग लगे चहँ, ओर चितौनु, कलंक लगे मग में पगु दै रो ।
 दंतनि दावि गहौ अंगुरी, अंगुरी कहँ नेकु जु पै उचरै रो ॥
 'देव' दुँ रहिए हँसिए नहि, बैगनि बैस किये जग बैरी ।
 जौ न निर रहिए घर में, तौ वन विरि आवत है घर बैरी ॥

(१९७)

(४४)

आई हौं देखि बधू इक 'देव', सु देखितै भूली सवै सुधि मेरी ।
 राख्यो न रूप कछु विधि के, घर लाई है लूटि लुनाई की डेरी ॥
 येवी अत्रै वहि ऐवे हैं चैस, मरैंगी हराहरु घूँटि घनेरी ।
 जे जे गनी गुनि-आगरि नागरि, हैहैं ते वाके चितौति की चेरी ॥

(४५)

नारि जु वारिज सी विकसी रहै, प्रेम कसी पिक-सी कल कूजै ।
 जा बड़ भाग के भौन बसी, तेहि पीतम के चलि कै पग छूजै ॥
 और कहा कहिए.तेहि द्वार की, दासी है 'देव' उदास न हूजै ।
 आँखिन को सुख सुन्दरि को, मुख दीखत हू दिख साध न पूजै ॥

(४६)

चूम्नै बड़े बवा नंद को बंस, जसोमति माय को मायको चूमत ।
 बोलत बातें बड़ी धन में, मन में वृषभानु बवा सों अरुमत्त ॥
 'देव' दवीं हम नेह के नाते, न तौ पुरिखा इन बातन जूमत ।
 जीभ सम्हारि न काढ़त गारि हौ, ग्वारि गँवारि हमें हरौ चूमत ॥

(४७)

प्राणपती के पयान प्रभात, प्रभाकर कोटि हुतो प्रतिकूल सों ।
 रहैं क्यों प्राण प्रलै पहिले दिन, दूनरो दौन दना दुख-मूल सों ॥
 नेह रच्यो विरहागि तच्यो, प्रिय-प्रेम पच्यो पजरै तन-तूल सों ।
 सासनि दूखि उत्सासनि रुखि, गयो मुख सूखि गुलाब के फूल सों ॥

(१९८)

(४८)

प्राण से प्राण-पती सो निरंतर, अंतर-अंतर पारत हेरी ।
 'देव' कहा कहाँ बाहेर हूँ, घर बाहर हूँ रहै भौंह तरेरी ॥
 लाज न लागति लाज अहे, मोहि जानी मैं आज अकाजिनि एरी ।
 देखन दे हरि को भरि नैन, घरी किनि एक सरीकिनि मेरी ॥

(४९)

सौँझ ही स्याम को लेन गई, सुवसी वन में सब यामिनि जाय कै ।
 सीरी बयारि छिदै अधरा, उरमो उर भाँखर भार सँभाय कै ॥
 तेरीसि को करिहैं करतूति, हुती करिवे मु करी तैं बनाय कै ।
 भोर ही आई भट्ट इत मो, दुखदाइन काज इतौ दुख पाय कै ॥

(५०)

पातरे अंग उड़ै बिन पंखन, कोमल बानि चवानि धिरी की ।
 जोवन रूप अनूप निहारि कै, लाज मरै निधि राजसिरी की ॥
 कौल से नैन कलानिधि सों मुख, कंठि फला गुन की गहिरी की ।
 वाँस के मीम अकाम पै नाचति, कोन छक्यो छवि सोनचिरी की ॥

(५१)

मान्यन सो मन दूध सो जोवन, है दधि ने अधिक उर ईंठी ।
 जा छवि आगे दपाकर छाँछ, बिनोकि मुधा बसुधा सब सीठी ॥
 नैनन नेह चर्य कहि 'देव', बुझावनि दैन बियोग अँगीठी ।
 ऐसी रसीली अदीरी अदी, कही क्यों न लगै मनमोहन मोठी ॥

